कुशवाहा कान्त

कुमकुम

कुंकुम



डायमंड बुक्स

eISBN: 978-93-5278-534-6

प्रकाशक: डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि.

X-30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II

नई दिल्ली-110020

फोन: 011-40712100, 41611861

फैक्स: 011-41611866

ई-मेल: ebooks@dpb.in

वेबसाइट: www.diamondbook.in

संस्करण: 2017

कुंकुम

लेखक: कुशवाहा 'कांत'

कुंकुम

मदमत्त मेघों ने स्वच्छाकाश पर अपना नृत्य आरंभ कर दिया। वायु वृक्षों के कोमल पल्लवों का आलिंगन करता हुआ विचरण करने लगा। मयूर हर्षोत्फुल हो चीत्कार कर उठे। मनोरम वनस्थली के पक्षी, वृक्षों की शाखाओं पर बैठकर कलरव करने में निमग्न हो गये। भुवनभास्कर के प्रज्जवलित मुख-मण्डल को, उमड़ती हुई सघन घनराशि ने आच्छादित कर लिया।

युवराज ने एक क्षण के लिए अपना अश्व रोककर सामने के वन्य-प्रदेश पर दृष्टि डाली।

कितना सघन, कितना वृक्षलतादिपूर्ण एवं कितना मनोहारी था भूखंड का यह भाग।..................

जहां पक्षियों का गुंजरित कलरव, प्रकृति-नटी की अद्भुत छटा एवं नेत्ररंजक हरियाली का मुग्धकारी नृत्य, हृदयप्रदेश में एक अनिर्वचनीय आनंद की सृष्टि कर रहा था।

संसार की कोलाहलमयी सीमा से दूर अवस्थित था, वनस्थली का यह अपूर्व प्रदेश।

युवराज अपने नेत्रों पर हथेली की आड़ देकर सामने की ओर देखने लगे, परन्तु मन्थरगति से हिलती हुई वृक्षों की टहनियों के अतिरिक्त कुछ दृष्टिगोचर न हुआ।

'जाम्बुक कहां रह गया...?' युवराज ने मानो वनस्थली में व्याप्त उस घोर नीरवता से प्रशन किया और फिर तुरंत ही अश्व से नीचे उतर पड़े।

अश्व की लम्बी बागडोर एक वृक्ष की शाखाओं में बांधकर, वे एक स्वच्छ स्फुटित-शिला पर आ बैठे।

आज ऊषा के आगमन के साथ ही युवराज ने उस वनस्थली में पदार्पण किया था–आखेट के हेतु। उनके साथ कितने ही पायक थे, परन्तु इस समय सब न जाने किधर भटक गये थे और युवराज वाराह की खोज में भयानक जंगल के उस भाग में आ पहुंचे थे।

युवराज के सुगठित शरीर पर बहुमूल्य वस्त्र एक विचित्रता लिए देदीप्यमान हो रहे थे। उनकी सुंदर मुखाकृति पर भीनती हुई यौवन-रेखायें अत्यंत सुंदर प्रतीत हो रही थीं। कंधे से लगा हुआ कार्मुक, तूणीर में आच्छादित कितने ही तीर एवं पार्श्व में लटकता हुआ तीक्ष्ण कृपाण-सब उनकी अतुल शक्ति के साक्षी थे।

सृष्टि के आदिकाल में, जिस समय संसार इतना सभ्य नहीं था, इतनी विशाल अट्टालिकायें, इतने वैभवशाली राजा प्रासाद एवं इतना उन्नत कला-कौशल नहीं था, जनता में शांति की रक्षा के लिए नियम उप-नियम नहीं बने थे, लोग अपने झगड़ों का निवारण तलवार की धार से किया करते थे–उस समय समस्त जम्बूद्वीप (भारतवर्ष) पर एक जाति शासन करती थी–द्रविड़! द्रविड़ राज युगपाणि की राजधानी थी पुष्पपुर एवं युवराज नारिकेल थे, युगपाणि के एकमात्र पुत्र।

'जाम्बुक..! जाम्बुक...!' युवराज की तीव्र पुकार निर्जन वन्य-प्रदेश में गुंजायमान हो उठी।

'जाम्बुक...! जाम्बुक...!' दूर क्षितिज से टकराकर युवराज की ध्वनि लौट आई, मानो उनका परिहास करता हुआ चारों दिशाओं में प्रकृति का भयानक अट्टहास गूंज उठा हो।

उसी समय पास की सघन वृक्षावलि के मध्य से सूखे पत्तों के चरमराने की ध्वनि सुनाई पड़ी। युवराज चौंककर उठ खड़े हुए।

देखा, एक विशालकाय वाराह खड़ा था, अपने प्रज्जवलित नेत्रों द्वारा युवराज को घूरता हुआ।

युवराज के नयन प्रकाशमान हो उठे। उनके विशाल बाहु चंचल हो गये। उन्होंने कार्मुक पर तीर चढ़ाया। वाराह के मुख से क्रोधपूर्ण गुर्राहट की ध्वनि निकल पड़ी। वह प्रबल वेग से टूट पड़ा युवराज के ऊपर।

युवराज संभल गये थे। जरा-सा पीछे हटकर दायीं ओर खड़े हो गये। दूसरे ही क्षण, तीव्र गति से उन पर आक्रमण करने के लिए आए हुए उस विकराल वाराह के तीक्ष्ण दांत, दाहिनी ओर के वृक्ष में धंस गए।

उसका बार खाली गया, इससे वह भयानक जन्तु और भी क्रोधित हो उठा। उसके मुख से दिशाओं को प्रकम्पित करती हुई भयानक घुरघुराहट निकाली।

युवराज ने कार्मुक कान तक खींचा।

दूसरे ही क्षण तीर सर्राता हुआ जाकर उस क्रुद्ध वाराह के पंजर में घुस गया।

दारुण चीत्कार के साथ वह भूमि पर लेट गया और छटपटाने लगा।

युवराज धीरे-धीरे उसकी ओर बढ़े। उनका अनुमान था कि वह मृतप्राय वाराह उस समय पूर्णतया अशक्त है और उन्हें किसी प्रकार की हानि पहुंचाने की सामर्थ्य उसमें नहीं है।

इसलिए वे वाराह के एकदम समीप चले गए, परन्तु ज्यों ही वे उसके सन्निकट पहुंचे, वह विचित्र गति से उठ खड़ा हुआ और सामने के घने जंगल की ओर भाग चला।

अपने शिकार को भागता देखकर युवराज विद्युत वेग से अश्व पर आरूढ़ हो गये।

उनका संकेत पाकर द्रुतगामी अश्व लक्षित दिशा की ओर भाग चला, अविराम गति से।

कितने ही नदी-नाले, झाड़-झंखाड़ पार किये जा चुके, परन्तु न तो वह वाराह ही रुका और न युवराज ने उसका पीछा छोड़ा।

दोनों में से किसी की गति में बाधा न पहुंची। युवराज का अश्व इतना अभ्यस्त था कि ऊबड़-खाबड़ भूमि पर भी तीव्र गति से अग्रसर हो रहा था।

पीछा करने की धुन में युवराज ने इस बात का ध्यान न दिया कि उनके मार्ग में ही एक वृक्ष की शाखा बहुत नीचे तक झुकी हुई है।

दूसरे ही क्षण एक करुण चीत्कार के साथ युवराज अश्व पर से नीचे आ रहे।

वृक्ष की शाखा उनके मस्तक से इतने प्रबल वेग से टकराई कि रक्त की धारा प्रवाहित हो चली।

स्वामिभक्त अश्व दो-चार पग आगे बढ़कर खड़ा हो गया। युवराज कुछ क्षणों तक चेतनाहीन रहे।

परन्तु चेतना आते ही वे पुनः अश्व पर जा चढ़े। मस्तक के घाव का उन्हें कुछ ध्यान ही नहीं रहा–ध्यान रहा तो केवल उस वाराह का, जो इस समय उनकी दुर्दशा का कारण बना।

वाराह अधिक दूर नहीं गया कि युवराज ने पुनः अपने कार्मुक पर तीर चढ़ाया।

सर्राता हुआ वह तीर जाकर वाराह की ग्रीवा में घुस गया।

ठीक उसी समय पास की सघन वृक्षावलि के पीछे से एक सांगी प्रबल वेग से आकर उस वाराह के पंजर में जा धंसी।

इन दोनों प्रबल आघातों को सहन न कर सकने के कारण वह दुर्दान्त वाराह भूमि पर लुढ़ककर अंतिम सांस लेने लगा। युवराज को आश्चर्य हुआ, महान आश्चर्य–यह देखकर कि उनके शिकार पर इस प्रकार आक्रमण करने वाला यह दूसरा कौन आ पहुंचा?

युवराज अपने अश्व पर से नीचे उतरे।

उसी समय एक सघन वृक्षावलि से निकलकर एक बीस वर्षीय बालक उनके सम्मुख आ खड़ा हुआ।

युवराज ने ध्यानपूर्वक उस युवक पर दृष्टि डाली। देखा–उसके मुख पर अपूर्व तेज प्रस्फुटित हो रहा है। शरीर नग्न है, केवल कटि-प्रदेश पर एक साधारण-सा वस्त्र है। कटि-प्रदेश में कृपाण लटक रहा है एवं हाथ में एक सांगी। वेशभूषा से वह किरात पुत्र-सा लग रहा था।

'कौन हो तुम...?' युवराज ने पूछा उस वीर युवक से।

'मैं किरात कुमार पर्णिक हूं...।' युवक ने किंचित् हास्य के साथ उत्तर दिया।

'किरातकुमार पर्णिक...?' युवराज ने स्थिर वाणी में दोहराया।

उनका हृदय तीव्र गति से क्रोधित हो उठा था, यह सोचकर कि इस धृष्ट युवक ने उनके शिकार पर अपनी सांगी चलाकर उनका घोर अपमान किया है।

'किरातकुमार पर्णिक? तुमने युवराज नारिकेल का अपमान किया है, मेरे शिकार पर अपनी सांगी चलाई है...जानते हो इसका परिणाम...?' युवराज बोले।

'इसका परिणाम...?' पर्णिक के सुंदर मुख पर पुनः हास्य रेखा नृत्य कर उठी---'क्या हो सकता है इसका परिणाम...? आप ही बताने का कष्ट कीजिये...चिर कृतज्ञ रहूंगा...।'

युवराज की देदीप्यमान मुखश्री म्लान पड़ गई, युवक की व्यंगात्मक बातें सुनकर।

उन्हें लगा, जैसे किरातकुमार के वेश में कोई आकाशीय देवता उनकी परीक्षा लेने भूतल पर उतर आया है—नहीं तो एक किरातकुमार में इतना साहस कहां?

'मुझे आश्चर्य है...!' पर्णिक दो पग आगे बढ़ आया—'कि युवराज ने अपने राजप्रासाद की सुखमयी गोद त्यागकर इस कंटकाकीर्ण वनस्थली में विचरण करना कैसे स्वीकार कर लिया एवं निरीह वन्य पशुओं पर अपनी अतुलित शक्ति का दुरुपयोग करना किस प्रकार उचित समझा?'

युवराज निश्चल खड़े रहे।

केवल एक बार उन्होंने आश्चर्य एवं क्रोधपूर्ण दृष्टि पर्णिक पर डाली।

'क्या युवराज के राजप्रासाद में आमोद-प्रमोद की वस्तुओं का इतना अभाव हो गया है कि उन्हें इस भूखंड में आकर अपने मनोरंजनार्थ वन्य-पशुओं का वध करना पड़ा? क्या युवराज के हृदय में वह अन्यायपूर्ण कार्य न्यायोचित प्रतीत हुआ है?'

'क्या अब पुष्पपुर के युवराज को एक किरातकुमार से न्याय की दीक्षा लेनी पड़ेगी?'

'न्याय पर किसी का एकाधिकार नहीं युवराज...!' निर्भय उत्तर दिया पर्णिक ने।

युवराज क्रोध एवं क्षोभ से कांप उठे—'तुम्हारी बातें अभद्रोचित हैं किरातकुमार! अच्छा हो कि तुम अपने इस सुकुमार मुख से ऐसे अप्रिय वाक्य न निकालो। युवराज की सहनशीलता का सीमोल्लंघन कर रही है तुम्हारी बातें।'

'हम दरिद्र हैं। हमें भोजन के लिए कन्दमूल भी दुर्लभ है। यदि हम अपनी क्षुधा के शमनार्थ ऐसे निकृष्ट मार्ग का अवलम्बन कर, वन्य-पशुओं का वध करे तो वह क्षम्य हो सकता है मगर आप...? आपको क्षुधा लगने पर मणि-मुक्ताओं की थालियां मिल सकती हैं। निद्रा लगने पर पुष्पशैया प्रस्तुत हो सकती है, प्यास लगने पर सुधारस भी मिल सकता है—यदि आप ऐसा घृणित कार्य केवल अपने हेय मनोरंजन की पूर्ति के लिए करें तो वह क्षम्य नहीं हो सकता—कभी नहीं हो सकता युवराज...।'

'युवराज नारिकेल तुम्हारी इन अभद्र एवं धृष्ट बातों का उत्तर कृपाण से देना चाहते हैं—सावधान!' युवराज ने कटिप्रदेश से लटकती हुई अपनी कृपाण खींच ली।

'मैं प्रसन्न हूं...युवराज को विदित हो कि पर्णिक की माता ने उसे मरना सिखाया है, जीना नहीं...।'

दोनों विकट प्रतिद्वन्द्वियों के कृपाण झन्न से एक-दूसरे से जा टकराये। नीरव वनस्थली कृपाणों की भयावनी झंकार से झंकृत हो उठी—झन्न! ! !

पास के वृक्षों पर बैठे हुए पक्षिगण पंख फड़फड़ाकर दूर उड़ चले।

वायु के प्रबल वेग से कांपकर एकाएक पत्तियां निश्चल हो गयीं।

दानवाकार मेघों के लुट जाने से भुवनभास्कर का देदीप्यमान मुखमंडल चमचमा उठा और वे प्रज्जवलित नेत्रों द्वारा उन दोनों समवयस्क युवकों का वह अद्भुत द्वन्द्व देखने लगे।

स्वर्णिम किरणों के पड़ने से दोनों के स्वेदाच्छन्न मुख अतीव प्रभावशाली दृष्टिगोचर हो रहे थे।

'परिहास नहीं है...पर्णिक पर विजय पाना, परिहास नहीं युवराज।'

पर्णिक का कृपाण तीव्र वेग से युवराज पर प्रहार करने को लपका।

युवराज ने पैंतरा बदला, जरा-सा झुके और विद्युत जैसी चपलता के साथ उन्होंने पर्णिक का वार विफल कर दिया।

'अब तुम बचना किरात युवक!'

युवराज ने अपने कृपाण का भरपूर दांव पर्णिक पर चलाया, मगर आश्चर्य कि वह वीर किरात पुत्र उस अचूक लक्ष्य से परे जा रहा, केवल उसके मणिबंध पर जरा-सी खरोंच आ गई।

'तुम अद्भुत हो किरातकुमार!' युवराज आश्चर्यचकित हो उठे—'नहीं तो तुम्हारे मणिबंध पर लगा हुआ वह तनिक-सा घाव तुम्हारे वक्ष पर होता!'

विकराल रूप धारण किये हुए युवराज ने पणिक के वार का प्रत्युत्तर दिया—'मुझे आश्चर्य है—घोर आश्चर्य है कि इस वन्य-प्रदेश में रहते हुए, कितना अच्छा शस्त्र संचालन तुमने किस प्रकार सीखा!'

'यह मेरी माताजी की कृपा है, युवराज! उन्होंने ही मुझे शस्त्र संचालन की शिक्षा दी है...।'

'धन्य है तुम्हारी माताजी...!'

'केवल मेरी ही माता नहीं, अवनी की माता, संसार के प्रत्येक प्राणी की माता होने योग्य हैं वे...आप अप्रतिम होते जा रहे हैं युवराज...! युद्ध में शिथिलता प्राणघातक हो सकती है।'

पर्णिक को आश्चर्य हुआ यह देखकर कि युवराज की शस्त्र-संचालन गति धीमी पड़ती जा रही है और बहुत सम्भव था कि पर्णिक का कृपाण उन पर संघातिक आक्रमण कर बैठता...कि सहसा पर्णिक की दृष्टि युवराज के मस्तक के घाव पर जा पड़ी।

इस समय भी उस घाव से रक्तस्राव हो रहा था। युवराज की शक्ति भी क्षीण होती जा रही थी।

क्रमशः उन पर अचैतन्यता के लक्षण स्पष्ट दीख पड़ने लगे और कुछ ही क्षणों के पश्चात् वे अर्धमूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े।

पर्णिक ने दौड़कर उन्हें उठाया—'युवराज...!' और अब पर्णिक ने युवराज के मस्तक का वह भयंकर घाव देखा।

युवराज के नेत्र धीरे से खुले। मुंह से क्षीण स्वर निकला—'मेरी चिंता न करो, पर्णिक...तुम्हारी माता प्रतीक्षा कर रही होंगी। अब मैं ठीक हूं।'

'मुझे आशा है कि श्रीयुवराज मुझे अवश्य क्षमा कर देंगे।' पर्णिक ने कहा।

युवराज ने स्वीकृति में केवल अपना मस्तक हिला दिया।

'पर्णिक! मुझे सहारा देकर घोड़े पर बैठा दो...और तब तुम जा सकते हो...।' युवराज बोले।

पर्णिक ने सहारा देकर युवराज को उठाया।

बोला—'मस्तक का घाव भयानक है युवराज। कहिए तो इसको धोकर बूटी बांध दूं...?'

युवराज ने क्षण-भर सोचा, पुनः स्वीकारात्मक रूप से सिर हिला दिया।

पर्णिक पास के झरने से पानी ले आया, युवराज को अपनी गोद में लिटाकर उनके मस्तक का घाव धोया, उस पर कोई जंगली बूटी पीसकर लेप कर देने के पश्चात्, युवराज के मुकुटबंध से कपड़ा फाड़कर सर पर पट्टी बांध दी।

'धन्यवाद!' युवराज ने कहा और पर्णिक के कंधे का सहारा लेकर उठ खड़े हुए।

पर्णिक ने उन्हें बलपूर्वक घोड़े पर बिठा दिया, तत्पश्चात् आगे बढ़कर मृत वाराह को उठा लिया और युवराज को अभिवादन कर जाने लगा।

'किरातकुमार...!' युवराज ने पुकारा।

और चार पग आगे बढ़े हुए पर्णिक को पुनः लौटना पड़ा।

पूछा—'क्या श्रीयुवराज ने मुझे पुकारा है?'

'हां, मैं चाहता हूं कि हमारी इस प्रतिद्वंद्विता का आज ही अंत हो जाए, कम-से-कम तब तक जब तक कि हम लोगों के बलाबल का पूर्ण निर्णय न हो जाये, हम लोग प्रतिद्वन्द्वी ही रहेंगे। यदि महामाया की कृपा रही तो जल्द ही हम दोनों कहीं-न-कहीं पुनः मिलेंगे...।'

'अवश्य मिलेंगे श्रीयुवराज...! मेरे हृदय में इस प्रतिद्वन्द्विता की अग्नि सदैव प्रज्जवलित रहेगी और मुझे विश्वास है कि बहुत जल्द हम पुनः मिलेंगे और तब हमारे बलाबल का निर्णय हो जायेगा...।' पर्णिक ने कहा।

युवराज बोले—‘जैसी महामाया की इच्छा। अब तुम जा सकते हो...।’

पर्णिक बढ़ चला, आगे की ओर। युवराज उसकी ओर तब तक देखते रहे, जब तक कि उसकी छाया सघन वृक्षाबलि के श्यामल आंचल में जाकर विलीन न हो गई।

□ □

□ □

पर्णिक ने अपनी पीठ का वाराह भूमि पर रखकर माता की ओर दृष्टिपात किया, जो इस समय झोंपड़े के द्वार पर बैठी हुई उसी की प्रतीक्षा कर रही थी।

सामान्य किरात-स्त्रियों के समान उनकी मुखाकृति पर मूढ़ता एवं दीनता नहीं थी।

साधारण वस्त्र धारण किये रहने पर भी उनके मुखमंडल पर अपूर्व तेज की रेखा विद्यमान थी।

‘इतनी देर से प्रतीक्षा कर रही हूं, कहां थे वत्स...?’ पूछा पर्णिक की माता ने।

‘क्या कहूं माताजी, यहां से कई योजन दूर चला गया था। एक प्रतिद्वंद्वी से भेंट हो गई...।’ पर्णिक ने श्रम की श्वास खींची।

‘क्या पराजित होकर आ रहे हो...? अपनी माता के श्वेतांचल पर कलंक-कालिमा लगा आये हो...?’

‘नहीं माताजी! आपका पुत्र क्या कभी पराजित हुआ है? फिर आज ही कैसे पराजित हो जाता...? मगर आपका मुख अप्रतिभ क्यों है, माताजी...?’

उसकी माता कुछ न बोली।

एक बार उसने सामने की ओर दृष्टि डाली। किरातों के सहस्त्रों झोंपड़े एक पंक्ति में लग बने हुए थे। कितने ही किरात बालक इधर-उधर अमोद-प्रमोद में तल्लीन थे।

उसकी माता ने एक दीर्घ श्वास ली—उस श्वास में निहित था हार्दिक वेदना पर प्रखर प्रतिरूप।

दो

संध्या का आगमन जैसे उलझनयुक्त एक गूढ़ समस्या है।

दिन का देदीप्यमान प्रकाश थक-थककर अपनी सहज वेदना का भार वहन करता हुआ रात्रि की भयानक कालिमा के अंचल में अपना गोरा-सा मुख छिपा लेता है।

दिवस की श्वेत परी रक्तरंजित प्रदेश का आलिंगन करती हुई अनंत की ओर बढ़ जाती है।

पुष्पपुर नगरी का पद-प्रक्षालन कर बहती हुई कालिंदी सरिता का निर्मल वक्षस्थल एवं श्वेत सुकोमल झागों से युक्त सुमधुर कलकल निनाद, थमने-थमने-सा हो जाता।

उसकी हाहाकारमयी वेगवती तीव्र धारायें अबाध गति से अग्रसर होना छोड़कर स्थिर हो जाती हैं—एकदम निश्चल !

तट पर बैठी हुई बकुल-राशि उड़कर ऊपर वृक्ष की मोटी शाखाओं पर जा बैठती है। संध्याकाल की उदासीन मलीनता घनघोर अंधकार में डूबने-डूबने-सी लगती है।

रात्रि का भयानक मुख हाहाकार करता हुआ यावत जगत को अपना ग्रास बना लेता है।

पुष्पपुर राजप्रासाद के ठीक सामने निर्मित महामाया के सुविशाल राजमंदिर से घंटे का ‘टन-टन’ स्वर सुनाई पड़ने लगता है,परन्तु निमिष मात्र में ही क्षितिज के पास से शीतलता की वर्षा करता हुआ एक प्रकाशमान रजतगोला, धीरे-धीरे आकाशमंडल को प्रदीप्त करता हुआ अपनी सुधामयी ज्योत्स्ना पुष्पपुर नगरी पर बिखेर देता है।

निर्मल चन्द्र ज्योत्स्ना में वैभवशाली पुष्पपुर चमक उठा है—चमाचम!

पुष्पपुर राजप्रासाद के अंतर्प्रकोष्ठ में बैठे हुए जम्बू द्वीप के अधीश्वर द्रविड़राज युगपाणि किसी प्रगाढ़ चिंता में तल्लीन हैं।

उनके तेजमान प्रतिभा-सम्पन्न नेत्रों के समक्ष, किसी बीभत्स घटना के अतीत चित्र अंकित हो रहे थे और परम तेजस्वी द्रविड़राज उन्हीं कष्टदायक विचारों में निमगन होकर दीर्घ श्वास लेकर रहे हैं।

चालीस वर्ष पार कर चुकने पर भी उनके अवयव अपूर्व बलशाली एवं मुखश्री दमकती हुई दृष्टिगोचर हो रही थी, परन्तु अपने इस लम्बे जीवन में उन्होंने क्या-क्या दुख, क्या-क्या कष्ट एवं क्या-क्या अवहेलनाएं नहीं सहन की थीं?

दैवी चक्र आरंभ से ही उनके प्रतिकूल चलता आ रहा था, परन्तु उन्होंने अतुलित धैर्य के साथ सब कुछ सहन किया था। शत्रुओं पर विजय पाई थी, प्रजा की रक्षा की थी, अतीव उत्साह के साथ।

न्याय!

द्रविड़राज युगपाणि का न्याय अटल था। उनके मुख से निकले हुए हर वाक्य न्याय के प्रतीक होते थे। उनके किसी कार्य ने, उनके किसी वाक्य ने, उनके किसी आचरण ने न्याय का उल्लंघन नहीं किया था।

द्रविड़राज युगपाणि चिंताग्रस्त होकर बैठे रहे। प्रकोष्ठ के प्रांगण से उदय होते हुए चन्द्र की एक रजत रेखा आकर नृत्य कर रही थी।

सुचित्रित काले पत्थरों पर चारुचन्द्रिका का वह कल्लोल ऐसा मनोहर था मानो स्वर्ग की दिव्य ज्योति आकर वहां पर अठखेलियां कर रही हो।

प्रकोष्ठ के बहिर्प्रांत में हाथीदांत के निर्मित चरणपादुका का खट-खट शब्द सुनाई पड़ा।

दूसरे ही क्षण द्वारपाल ने आकर निवेदन किया 'श्री महापुजारी जी पधारे हैं।'

द्रविड़राज के मस्तक पर चिंता की रेखाएं उभर आईं।

ऐसे समय में महापुजारी जी ने आने का क्यों कष्ट किया...? उन्होंने सोचा, दूसरे ही क्षण संकेत से स्वीकृति दे दी।

पुष्पपुर राजप्रासाद के ठीक सामने महामाया का राजमंदिर हे। महापुजारी पौत्तालिक महामायों के अनन्य उपासक, धर्माचार्य एवं राजगुरु हैं।

राज्य के सभी पदाधिकारी उनकी आज्ञा का पालन करते हैं। द्रविड़राज युगपाणि में भी इतना साहस नहीं कि महापुजारी की आज्ञा की अवहेलना कर सकें

दीर्घाकार आकृति, गौर वर्ण, सुविशाल मस्तक पर चंदन का तिलक लगाये हुए, महापुजारी पौत्तालिक के मुखश्री से एक अपूर्व तेज प्रतिभासित होता रहता है।

गले में बड़ी-बड़ी रुद्राक्ष मालाएं, शरीर पर स्वर्ण खंचित पीताम्बर एवं पैरों में हाथी दांत की पादुका-वास्तव में वे पुजारी थे। उनके मुख से अविच्छिन्न प्रतिभा प्रस्फुटित होती थी, मानो महामाया की समग्री तेजराशि उनके नेत्रद्वय द्वारा यावत् जगत का निरीक्षण कर रही हो।

द्रविड़राज ने महापुजारी के चरण छुए।

महापुजारी ने 'आयुष्मान भव' कहकर उनकी मंगल कामना की, तत्पश्चात् वे द्रविड़राज की शैया पर आकर बैठ गये। द्रविड़राज भी पैताने बैठकर राजगुरु की प्रतीक्षा करने लगे।

‘श्री सम्राट का मुखमंडल श्रमित, क्लांत एवं प्रतिभाहीन क्यों दृष्टिगोचर हो रहा है…?’ महापुजारी ने पूछा—‘क्या किसी प्रगाढ़ चिंता ने भी सम्राट के हृदयालोक पर अपनी कालिमा बिखेर दी है या राज्य-संचालन में कोई दुरूह बाधा उपस्थित होने के कारण, इतने व्यंग्र हो रहे हैं?’

‘कुछ नहीं है…’ द्रविड़राज ने किंचित स्मित करने का व्यर्थ प्रयत्न किया—यह सब कुछ नहीं है, महापुजारी जी! मेरे हृदय में कोई चिंता, कोई व्यग्रता, कोई कष्ट नहीं है—और न राज्य पर ही कोई विपत्ति आई है, सब कार्य पूर्ववत् सुचारु रूप से संचालित हो रहे हैं। प्रातःकालीन सूर्य की स्वर्णिम आभा हिमराज के हिमाच्छादित उच्च शिखरों पर कल्लोल करती हुई पुष्पपुर-निवासियों के हृदय-प्रदेश में एक अनिर्वचनीय आनन्दोल्लास की सृष्टि कर देती है। सन्ध्याकाल में हिमराज के आंचल का आलिंगन करके आता हुआ सुखद समीर, शरीर का सम्पर्क कर दिवस का सारा परिश्रम अपने साथ उड़ा ले जाता है। रात्रि में पक्षिगण अपने नीड़ों में विश्राम करते हैं। यावत् जगत सुखद निद्राभूत होकर स्वप्न-संसार में विचरण करता है। सब कुछ यथावत हो रहा है, महापुजारी जी!

कहते-कहते सम्राट ने महापुजारी के प्रतिभायुक्त मुख पर अपनी दृष्टि डाली। महापुजारी जी की आकृति गंभीरता धारण किए हुए थी।

‘किंतु सभी कार्य जब यथावत चले रहे हैं तो आप ऐसे प्रश्न क्यों कर रहे हैं, महापुजारी जी। क्या आपके दिव्य चक्षुओं को किसी प्रलयंकारी अनिष्ट का आभास मिला है…?’ सम्राट ने पूछा।

‘जाने दीजिए इन सब कष्टदायक बातों को। समय पड़ने पर उचित प्रबंध किया जा सकता है…आप अस्वस्थ हैं। सन्ध्योपासना में भी आप सम्मिलित न हो सके…।’

‘सन्ध्या-पूजन हो गया क्या…?’ अभी तक सम्राट को यह भी पता न था कि इस समय एक प्रहर रात्रि व्यतीत हो चुकी है।

'संध्यायोपासना तो बहुत पहले ही समाप्त हो चुकी है, श्रीसम्राट...! परन्तु दुख है कि न तो आपने ही पदार्पण करने का कष्ट किया और न ही श्रीयुवराज ने ही, भला यह बेला शयनकक्ष में रहने की है? अवश्य आपके अन्तःस्थल में कोई गुह्य व्यथा है श्रीसम्राट...!'

उसी समय द्वारपाल ने पुनः प्रवेश कर सम्राट एवं महापुजारी को अभिवादन किया—'प्रातःकाल से श्रीयुवराज आखेट को गये हैं,और अभी तक नहीं लौटे...।' उसने विनम्र स्वर में कहा।

'अभी नहीं लौटा...?' द्रविड़राज ने अस्त-व्यस्त स्वर में पूछा।

'अभी तक नहीं...?' महापुजारी का शरीर अनिष्ट की आशंका से कम्पायमान हो उठा।

थोड़ी देर बाद महापुजारी हंस पड़े—'आप निश्चिंत रहें। महामाया की माया से भी युवराज पर कोई अनिष्ट आ पड़ने की आशंका नहीं है।'

'हृदय नहीं मानता, महापुजारी...!' द्रविड़राज युगपाणि ने दीर्घ श्वास छोड़कर कहा—'सब कुछ खो चुका हूं, अब यदि उसे भी खो बैठूंगा तो कैसे धैर्य रख सकूंगा? इस पृथ्वी पर अब अकेला ही तो हूं—युवराज ही मेरे नेत्रों की ज्योति है।'

'इस प्रकार व्यथित होना एक सम्राट के लिए अशुभ-सूचक है, ऐसे विशाल हृदय में एक तुच्छ भावना को स्थान देना हेय है, घृणित है...कौन कह सकता है कि द्रविड़राज युगपाणि इस नश्वर जगत में एकाकी है? जम्बूद्वीप के अधीश्वर को ऐसी अशुभ बात मुख से बहिगर्त नहीं करनी चाहिए। जम्बूद्वीप की सारी प्रजा आपकी संतान हैं, द्वीप का सारा ऐश्वर्य आपकी सम्पत्ति है और द्वीप की सारी प्रकृति-प्रदत्त सुषमा आप पर निछावर होने को प्रस्तुत है, श्रीसम्राट...! फिर क्यों आप इस प्रकार अधीर हो रहे हैं?'

'महापुजारी जी...।'

'आज्ञा श्रीसम्राट देव।'

'मुझे बचाइये...मेरी रक्षा कीजिये, महापुजारी जी...।' द्रविड़राज व्यथित स्वर में बोला—'मैं पथ विमुख हो रहा हूं, मुझे शक्ति प्रदान कीजिये...।'

'कौन-सी ऐसी दुर्भेद्य शक्ति है जो आपको पथविमुख कर रही है, श्रीसम्राट का हृदय सदैव निर्धारित मार्ग पर अग्रसर होगा...।'

पूर्व स्मृति की चिंगारी भीषण दावानल बनकर मेरा रक्त शोषण कर रही है। आज कई दिनों से राजमहिषी त्रिधारा की स्मृति मेरे अंतर्पट पर उभर कर मुझे व्यथित कर रही है, महापुजारी जी! मैं नहीं जानता था कि आज से पच्चीस वर्ष पूर्व किए हुए कार्यों के लिए अब पश्चाताप करना होगा...।'

पच्चीस वर्ष पूर्व ?

जबकि न्याय के रक्षार्थ द्रविड़राज ने अपनी महारानी को आजन्म निर्वासन का दण्ड दिया था—

जबकि युवराज नारिकेल को रोता हुआ छोड़कर पुष्पपुर की राजलक्ष्मी त्रिधारा चली गई थी—'अपने पेट में सात महीने का गर्भ धारण किये हुए।

'श्रीसम्राट...!' महापुजारी की मुखाकृति कठोर हो गई—'आपको भूल ही जाना होगा इन सारी अनिष्टकारी बातों को, अन्यथा...!' महापुजारी के ललाट पर दुश्चिन्ता की रेखायें खिंच आयीं।

एक दीर्घ श्वास लेकर वे पुनः बोले—'मैंने आपको इतना दुर्बल हृदय नहीं समझा था कि अपने ही न्याय के प्रति, आप स्वयं पश्चाताप करेंगे...। अनर्थ हो जाएगा—प्रलय आ जायेगी श्रीसम्राट...।'

महापुजारी रुके कुछ देर के लिए। उन्होंने आगे बढ़कर द्रविड़राज का कम्पित कर पकड़ लिया और उनके मुख पर अपने प्रज्जवलित नेत्र स्थिर कर दिए।

सम्राट को लगा जैसे महापुजारी की वे क्रूर आंखें उनके अंतःस्थल में प्रवेश करती जा रही हैं।

'श्रीसम्राट...!' महापुजारी ने पुकारा दृढ़ स्वर में।

'महापुजारी जी...।' सम्राट का स्वर लड़खड़ा गया था।

'आपको इन अनिष्टकारी कल्पनाओं से दूर रहना पड़ेगा। विगत घटनाओं को पुनः स्मृतिपट पर लाकर प्रलय का आह्वान कीजिये। द्रविड़राज का 'न्याय' हिमराज-सा अटल है, आप व्यथित हैं, व्यथा के शमनार्थ चक्रवाल की आवश्यकता है आपको। मैं उसे अभी भेजता हूं। वह अपने सुमधुर गायन द्वारा आपके कर्ण-कुहरों में अमृतवर्षा कर देगा। भूल जायेंगे आप इन सारी दुश्चिन्ताओं को।'

महामाया के मंदिर में उपासना के समय नृत्य करने वाली किन्नरी निहारिका के साथी का नाम था चक्रवाल!

जब किन्नरी निहारिका, महामाया की प्रतिमा के समक्ष अपनी समस्त कलाओं का एकत्रीकरण कर नृत्य करती तो चक्रवाल अपनी वीणा पर खेलता हुआ अपने सुमधुर गायन द्वारा उस नृत्य में मोहिनी-शक्ति उत्पन्न कर देता।

जिस प्रकार किन्नरी की नृत्य-कला अपूर्व थी, जीवनदायिनी थी—उसी प्रकार थी चक्रवाल की गायन कला।

वह चारण था। संगीत के ललित प्रवाह से द्रविड़राज को प्रसन्न रखना ही उसका कार्य था। द्रविड़राज, महापुजारी एवं युवराज—सभी विमुग्ध थे उस युवक चारण की गायन-कला पर।

ऐसा था चक्रवाल!

बीस वर्ष का युवक...मुख पर दीनतापूर्ण गंभीरता। आंखों में जैसे आंसुओं का आगाध सागर भरा पड़ा हो। कभी हंसता न था। रो लिया करता था—कभी-कभी।

सम्राट चुपचाप निश्चल बैठे थे।

'बोलिए श्रीसम्राट! आप चुप क्यों हैं...?' महापुजारी बोले।

'क्या कहूं महापुजारी जी...।' द्रविड़राज के मुख से बहिर्गत इस छोटे से वाक्य में वेदना की अगमराशि निहित थी।

"अजब अंधेरी रात साथी, अजब अंधेरी रात!"

पग-पग पर छाया अंधियारा,

बही जा रही जीवनधारा...

'आली! तेरे नयनों में है आज घिरी बरसात! साथी...!'इस कर्णप्रिय मधुर संगीत से सारा प्रकोष्ठ गूंज उठा।

ऐसा लगा, मानो स्वर्ग का कोई किन्नर भू पर उतर आया हो।

पवन निश्चल हो गया, पल्लवों ने हिलना बंद कर दिया, पक्षियों का गुंजरित कलरव मधुर नीरवता में परिणत हो गया।

गाते हुए चक्रवाल की वह मधुर गीत-लहरी वातावरण में सरसता घोलती रही—

'बिछुड़ गये वो मन के वासी
छाई तेरे मुख पै उदासी-
सूख गये हैं बिरह में उनके-
मृदुल मनोहर गात—साथी अजब अंधेरी रात।'

'लीजिये...! चक्रवाल तो स्वयं इधर ही आ रहा है...।' महापुजारी ने कहा।

उसी समय बीस वर्षीय युवक चारण वहां आ उपस्थित हुआ।

चक्रवाल ने झुककर महापुजारी के चरण छुए एवं द्रविड़राज को अभिवादन किया।

'क्या श्रीसम्राट अस्वस्थ हैं...?' उसने विनम्रता से पूछा।

'तुम अपनी कला द्वारा श्रीसम्राट को स्वस्थता प्रदान करो...।' कहते हुए महापुजारी प्रकोष्ठ से बाहर चले गए।

चक्रवाल ने आगे बढ़कर प्रकोठ में रखी हुई वीणा उठा ली।

वीणा के तार झंकार उठे—झन्न! झन्न!!

चक्रवाल की अभ्यस्त अंगुलियां वीणा के तारों पर अविराम गति से दौड़ चलीं।

मधुर झनकार ने हृततन्त्री के तारों को झंकृत करना प्रारंभ कर दिया।

प्रकृति कांपने-सी लगी। धवल चन्द्र खिलखिला उठा। दिशायें हंस पड़ीं।

'अब रहने दो, चक्रवाल! हृदय सम्राट के प्रखर आघात को यह वीणा की झंकार और द्विगुणित कर रही है...।'

'क्या श्रीसम्राट को कोई मानसिक व्यथा कष्ट दे रही है?' चक्रवाल ने वीणा रखते हुए पूछा।

'तुम युवक हो...तुम क्या जान सकोगे उस व्यथा की बात...?' सम्राट के मुख पर करुण मुस्कान नत्य करने लगी।

'मैं सुनना चाहता हूं, श्रीसम्राट...! आपकी व्यथा की कहानी अवश्य सुनूंगा...।'

'सुनोगे...? जिस करुण गाथा को आज पच्चीस वर्ष से अपने अंतरा में छिपाये मैं जल रहा हूं, उसे सुनोगे तुम?' द्रविड़राज बोले—'न सुनो चक्रवाल! शायद तुम भी व्यथाग्रस्त हो जाओ...वह एक दुःखद कहानी है, इसलिऐ तो अभी तक युवराज को भी नहीं बतलाया है मैंने। सम्भवतः सुनकर मुझसे भी अधिक व्यथित हो जायेगा वह...। खैर! तुम सुन लो मगर

युवराज को मत सुनाना—यह उसकी माता की कहानी है—यह मेरे न्याय की कहानी है...।'

चक्रवाल कुछ आगे खिसक आया।

द्रविड़राज कहने लगे—'आज से पच्चीस वर्ष पूर्व...।'

तीन

जी हां, आज से पच्चीस वर्ष पूर्व, सम्राट युगपाणि बाईस वर्ष के नवयुवक योद्धा एवं प्रतिभासम्पन्न शासक थे।

उस समय द्रविड़राज का संसार हरीतिमा-सा मनोहर एवं मुकुलपुष्प-सा सौंदर्यपूर्ण था।

वे अपनी धर्मपत्नी राजमहिषी त्रिधारा का अपूर्व प्रेम प्राप्त करते हुए सुखमय दाम्पत्य जीवन का उपभोग कर रहे थे, परन्तु बहुत दिन व्यतीत हो जाने पर भी अभी तक उन्हें संतान की प्राप्ति नहीं हुई थी।

यही एक कारण ऐसा था जिससे राजदम्पती के मधुर मुस्कान युक्त मुख पर कभी-कभी वेदना की प्रखर कालिमा छा जाती थी।

यों तो सम्राट द्रविड़राज भी इस बात के लिए कम चिंतित नहीं थे, परन्तु राजमहिषी त्रिधारा की चिंता असीम थी। वे रात-दिन इसी चिंता से व्याकुल रहतीं। यद्यपि द्रविड़राज राजमहिषी के दुख का, चिंता का कारण पूर्णतया समझते थे, मगर सब व्यर्थ। पुष्पपुर की सारी प्रजा राजदम्पती के इस कष्ट से दुखी थी। पुष्पपुर का अतुलित वैभव एवं श्रीसम्पन्न वातावरण सूना-सा प्रतीत होता था—बिना एक युवराज के।

कई मास व्यतीत हो गए।

घनघोर गर्जन के साथ बरसते हुए काले-काले बादल जब शिशिर की मधुमयी ओस में परिवर्तित हो गये—

अब हिमाच्छिदित हिमराज के उच्चतम शिखरों ने नीलाकाश का चुम्बन करते हुए दुग्धवत श्वेत रंग धारण कर लिया।

जब पुष्पपुर नगरी पर शिशिर ने अपने कलापूर्ण कर्णों द्वारा अगाध सुषमा बिखेर दी—

तब एक रात्रि को द्रविड़राज युगपाणि राजमहिषी त्रिधारा के साथ सुसज्जित शयन-कक्ष में विश्राम कर रहे थे, उन्होंने राजमहिषी के मुख पर आज प्रसन्नता की प्रोज्वल रेखायें देखीं तो उन्हें आश्चर्य हुआ।

'तुम अतीव प्रसन्न दिखाई दे रही हो, राजमहिषी...। तुम्हारे क्लांत मुख पर इस समय चन्द्रदेव की मधुरिमा नृत्य कर रही है—इसका कारण...? इसका कारण बता सकती हो, राजमहिषी?' पूछा उन्होंने।

'कारण आप अभी तक नहीं जान सके, नाथ...!' राजमहिषी ने द्रविड़राज के विशाल वक्ष पर अपना मस्तक टेक दिया—'प्रसन्नता क्यों न हो...? नीरस हृदय प्रदेश में अनिर्वचनीय आनंद क्यों न नृत्य करे...? जबकि अपनी सुषमा बिखरने के लिए विधाता ने एक मानव का सृजन किया है। अंधकारमयी रात्रि का गर्व-खर्व करने के लिए एक परमोज्वल शिशु इस अवनीतल पर अवतरित होने वाला है। राज दंपत्ति की शून्य गोद भरने के लिए महामाया की माया अपना चमत्कार दिखाने वाली है...।'

'सत्य कहती हो राजमहिषी...!' आश्चर्यपूर्ण हर्षोल्लास से सम्राट उछल पड़े—'क्या तुम सत्य कहती हो, प्रिये? क्या वास्तव में हमारे नष्टप्राय एवं अंधकारपूर्ण संसार को अपनी प्रतिभा से प्रोज्वल करने के लिए कोई दैवी शक्ति आ रही है, क्या सत्य ही हमारी सूनी गोद, कुछ ही दिनों में किसी सुकुमार शिशु के मधुर क्रन्दन से गुंजरित होने वाली है? सत्य कहना राजमहिषी।'

'ऐसी शुभ बात भी कोई असत्य कहता है, सम्राट देव...?' राजमहिषी ने लज्जा से अपना उज्ज्वल मुख सम्राट की गोद में छिपा लिया।

इस समय राजदम्पती को संतान के आगमन से जो आह्लाद हुआ वह वर्णनातीत था।

वर्षों की प्रतीक्षा के पश्चात् उनकी गोद भरने वाली थी, उनके दुखपूर्ण जीवन की समाप्ति होने वाली थी—तो क्यों न वे हर्ष से चीत्कार कर उठते।

ज्यों-ज्यों प्रसव के दिन सन्निकट आने लगे, त्यों-त्यों द्रविड़राज की प्रसन्नता में वृद्धि होती गई।

और अंत में एक दिन राज प्रासाद एक नवजात शिशु के क्रन्दन से मुखरित हो उठा।

□ □

□ □

दिवस एवं रात्रि की श्वेत एवं श्यामल अप्सरायें आकर यावत जगत पर अपनी सुषमा बिखेरती रहीं। समय का चक्र द्रुत गति से घूमता रहा।

पलक मारते दो वर्ष व्यतीत हो गये।

तृतीय वर्ष में पदार्पण करते ही युवराज का नामकरण संस्कार हुआ।

महापुजारी पौत्तालिक युवराज की मंगलकामना के लिए महामाया से प्रार्थना करते थे और महामाया के चरणों पर चढ़ाया हुआ कुंकुम (रोली) लाकर युवराज के मस्तक पर लगाते,ताकि युवराज पर किसी भावी विपत्ति की आशंका न रहे।

यह नित्य का, प्रतिदिन का कार्य था।

प्रातःकाल होते ही राजमंदिर का घंटा घोष करने लगता। द्रविड़राज युवराज को गोद में लेकर महामाया के मंदिर में उपस्थित होते। राजकिन्नरी नृत्य करती हुई महामाया की आरती उतारती। महापुजारी पौत्तालिक विधिवत पूजन करते एवं महामाया के चरणों पर स्वर्णपात्र में भरा हुआ कुंकुम अर्पित करते।

पूजन समाप्त हो चुकने पर वही कुंकुम बाल युवराज के मस्तक पर लगा दिया जाता। भोले युवराज की देदीप्यमान मुखश्री कुंकुम की लालिमा से और भी प्रोद्भासित हो उठती थी।

इसी तरह मास-पर-मास व्यतीत होते चले गए। एक दिन, जबकि द्रविड़राज युगपाणि राजमहिषी त्रिधारा के शयन प्रकोष्ठ में विश्राम कर रहे थे। तो राजमहिषी से यह सुनकर कि कुछ ही मास पश्चात् उन्हें एक दूसरी संतान की प्राप्ति होने वाली है तो उनके हर्ष का पारावार न रहा।

'कितने सौभाग्य का विषय है प्रिये!' द्रविड़राज कहने लगे—'जहां हम एक संतान के लिए लालायित रहते थे, वहां अब दूसरी संतान हमें प्रसन्नता प्रदान करने आ रही है...।'

'परन्तु इस बार न जाने क्यों मेरा हृदय अत्यंत उद्विग्न रहता है, प्राण...पता नहीं क्या होने वाला है...।'

'किसी प्रकार की दुश्चिन्ता में न पड़ो, साम्राज्ञी...!' द्रविड़राज ने अपने कण्ठ में पड़ा हुआ बहुमूल्य रत्न हार निकालकर राजमहिषी के गले में पहना दिया—'यह लो! प्राचीनकाल से आता हुआ परम पवित्र कल्याणकारी रत्न तुम्हारी रक्षा करेगा। यह हमारे प्राचीन महापुरुषों द्वारा प्रदत्त रत्नहार है—इसकी अवहेलना,इसका अपमान न करना—नहीं तो अनिष्ट की संभावना है...इसका अपमान करने पर राजदण्ड का भागी होना पड़ेगा।'

दूसरे दिन जिस समय महामाया का पूजनोत्सव समाप्त हुआ तो महापुजारी ने द्रविड़राज के कण्ठ-प्रदेश में वह पवित्र रत्नहार न देखकर पूछा—'श्रीसम्राट! आज वह पवित्र रत्नाहार आपके कंठ-प्रदेश में नहीं है। क्या आपने उसे कहीं रख दिया है...?'

'राजमहिषी को पुनः संतान की प्राप्ति होने वाली है—मैंने उनकी मंगल कामनार्थ वह पूजनीय रत्नहार उन्हें दे दिया है और उनसे कह दिया है कि रत्नहार की तनिक भी उपेक्षा न की जाए...।' द्रविड़राज ने कहा।

□ □

□ □

व्योम के दुकूल पर से एक प्रकाशमान स्वर्गगोला क्रमशः ऊपर उठकर संसार पर अपनी तेजमयी प्रतिभा एवं प्रखर प्रकाश बिखेरने लगा।

दिवस के शुभ प्रकाश में पुष्पपुर राजप्रासाद की चित्र-विचित्रत दीवारें कल्लौल करती-सी प्रतीत होने लगीं। महामाया के मंदिर का उच्चतम शिखर जो विविध कलाकारों द्वारा स्वर्ण एवं मणिमुक्ताओं से निर्मित था—भुवनभास्कर की प्रोद्भासित मुख-राशि का संयोग पाकर चमक उठा—झकाझक।

हिमराज के हिमाच्छादित शिखर उष्णता से पिघल-पिघलकर कल-कल निनाद करते हुए छोटे-छोटे नदी-नालों में परिवर्तित होने लगे।

राजमहिषी त्रिधारा ने पलंग पर अपने कुल का वह पवित्र रत्नहार उतारकर रख दिया था और स्वयं कदाचित स्नान करने चली गई थी। वहां कोई न था।

उछलता-कूदता हुआ एक वानर न जाने कहां से राजप्रासाद के अंतप्रकोष्ठ में जा पहुंचा।

रत्नहार की अद्भुत प्रोज्वलता ने उसका मन अपनी ओर आकर्षित किया।

उसने आगे बढ़कर अपने खुरदरे हाथों द्वारा वह परम पवित्र रत्नहार उठा लिया।

एक क्षण तक वह उसकी ओर अनिमेष दृष्टि से देखता रहा। पुनः उसने उसे अपने रोमपूर्ण कंठ में पहन लिया और अंतर्प्रकोष्ठ से बाहर आकर इतस्ततः वृक्षों पर उछलने-कूदने लगा।

नियति का चक्र सदैव परिचालित होता रहता है। भवितव्य होकर ही रहता है। द्रविड़राज के ऊपर जो भावी संकट आने वाला था, उसका यह संकेत था।

वृक्षों पर इतस्ततः क्रीड़ा करता हुआ वानर राज-प्रकोष्ठ से बहुत दूर निकल गया। एक सघन वृक्षलतादिपूर्ण उद्यान में पहुंचकर वह रुका। उसने गले का रत्नहार उतारकर हाथ में ले लिया और उसे उछाल-उछालकर कौतुक करने लगा। वृक्ष की एक मोटी शाखा पर बैठकर क्रीड़ा करता हुआ वह क्या जानता था कि जिस वस्तु को वह इतना तुच्छ समझ रहा है, वह है एक परम पवित्र रत्नहार, जिसकी एक-एक मणि, जिसकी एक-एक मुक्ता, प्रबल मंत्रों द्वारा अभिमन्त्रित की गई है और जिसका तनिक-सा अपमान प्रलय की सृष्टि कर सकता है।

इतिहास का वह स्वर्णिम युग था,जबकि मनुष्यों में इतनी शक्ति, इतनी श्रद्धा एवं इतना विश्वास था कि वे मंत्रों के प्रभाव से अप्राप्य वस्तुओं को भी प्राप्त कर लेते थे।

क्रीड़ा करते-करते वह रत्नहार वानर के हाथों से छूटकर भूमि पर आ रहा। उसी समय उसकी दृष्टि उद्यान में लगे हुए नाना प्रकार के पौधों पर पड़ी, जिन पर गंधयुक्त पुष्प प्रस्फुटित होकर अपनी मधुर गंधराशि पवन को प्रदान कर रहे थे।

दूसरी ओर अगणित फलों के वृक्ष, फलों के भार से भूमि का चुम्बन कर रहे थे।

वानर भूल गया उस पवित्र रत्नहार को। उसका मन उन सुंदर पुष्पों एवं सुस्वादु फलों के लिए मचल उठा।

वह वृक्ष से नीचे उतर आया और उद्यान के पुष्पों एवं फलों को तोड़ने लगा। कुछ उदरस्थ करता हुआ नष्ट करता।

जिस समय राजमहिषी त्रिधारा ने विधिवत् स्नान करके अपने शयन-कक्ष में प्रवेश किया, उस समय यह देखकर कि वह परम पवित्र रत्नाहार शैया पर नहीं है, उनका हृदय प्रबल वेग से कम्पायमान हो उठा।

न जाने किस भावी आशंका से उनकी दाहिनी बांह फड़क उठी। उनके नेत्रों के समक्ष घोर अंधकार आच्छादित हो उठा।

बहुत खोज करने पर भी जब वह रत्नहार न मिला तो राजमहिषी की चिंता बढ़ चली।

उन्होंने प्रासाद के प्रत्येक भाग को राई-रत्ती ढूंढा,पर वह कहीं न मिला। नियति का क्रूर एवं भयानक चक्र पुष्पपुर के राजप्रकोष्ठ पर आकर स्थिर हो गया था, तभी तो इतनी अघटित घटनायें हो रही थीं।

नियति अपने विकराल करों द्वारा द्रविड़राज के लिए एक वीरान संसार का सृजन कर चुकी थी—तो यह रत्नहार मिलता ही क्योंकर!

रात्रि में जिस समय द्रविड़राज युगपाणि शयन-कक्ष में आये तो उन्हें यह देखकर महान दुख एवं आश्चर्य हुआ कि राजमहिषी त्रिधारा का हृदय अत्यधिक व्यग्र एवं चंचल है।

'राजमहिषी...। प्रिये...।' द्रविड़राज ने राजमहिषी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया—'मैं अवलोकन कर रहा हूं कि तुम्हारी देदीप्यमान मुखश्री इस समय प्रभाहीन हो रही है...ऐसा क्यों...?'

द्रविड़राज ने राजमहिषी के नेत्रों की ओर अनिमेष दृष्टि से देखते हुए कहा —'और...यह क्या?'

अकस्मात् द्रविड़राज की दृष्टि महिषी के कंठ-प्रदेश पर जा पड़ी। वह पवित्र रत्नहार न देखकर उनके आश्चर्य का पारावार न रहा।

'रत्नहार क्या हुआ...? क्या कहीं निकालकर रख दिया है तुमने?'

साम्राज्ञी का सारा शरीर भय एवं आवेग से कम्पित हो उठा—'हां प्राण! आज हृदय कुछ अधिक व्यग्र था। अतः मैंने रत्नहार उतारकर यत्नपूर्वक मणि मंजूषा में रख दिया है...।'

आज तक साम्राज्ञी ने कभी असत्य नहीं कहा था, परन्तु नियति के कुचक्र ने उन्हें ऐसा कहने को बाध्य कर दिया।

उन्हें अभी आशा थी कि कदाचित् वह रत्नहार कहीं मिल जायेगा।

‘देखना प्रिये! वह मेरे पूर्वजों द्वारा निर्मित परम प्रभावशाली मंत्रों द्वारा अभिमंत्रित रत्नहार है। उसका तनिक भी अपमान अनादर न हो। उसे महान प्रयत्नपूर्वक रखना, नहीं तो अनिष्टकारी घटनायें घटित होते देर न लगेगी।’

सम्राट कुछ क्षण तक रुके। पुनः बोले—पूर्व पुरुषों के कथनानुसार वे क्रूर ग्रह मेरे भाग्याकाश पर उभर आये हैं...जिनके कुप्रभाव से मेरा संसार विनष्ट होने वाला है—ऐसा राज्य के प्रधान ज्योतिषाचार्य का कथन है। इसीलिए मैं तुम्हें सावधान रहने का आदेश दे रहा हूं।’

बेचारे द्रविड़राज को क्या मालूम था कि उन क्रूर ग्रहों ने अपना प्रलयंकारी कार्य प्रारंभ कर दिया है।

दिन बीतते गये...द्रविड़राज ने जब-जब राजमहिषी से उस पवित्र रत्नहार की बात पूछी, तब-तब राजमहिषी ने कहा कि वह मणि मंजूषा में सुरक्षित है।

अन्ततोगत्वा महामाया मंदिर के वार्षिक पूजनोत्सव का दिन आ उपस्थित हुआ।

महामाया के मंदिर को विविध मणिमुक्ताओं द्वारा सुसज्जित कर दिया गया। हरित पल्लवों से निर्मित वन्दनवार की पंक्तियों ने शोभा द्विगुणित कर दी। विविध साज-सज्जा से मंदिर का कोना-कोना मुखरित हो उठा।

पूजनोत्सव के दिन महापुजारी ने उस पवित्र रत्नाहार को द्रविड़राज से मांगा, क्योंकि महामाया की उपासना के पश्चात् उसकी भी विधिवत उपासना होती थी।

महापुजारी पौत्तालिक के आदेशानुसार द्रविड़राज अन्तर्प्रकोष्ठ में आये और राजमहिषी से वह रत्नहार मांगा ।

राजमहिषी के श्वेत मुख मंडल पर प्रखरतर कालिमा फैल गई ।

उन्होंने रत्नहार देने में अपनी असमर्थता प्रकट की।

द्रविड़राज को किंचित आश्चर्य हुआ—यह क्यों राजमहिषी...? रत्नहार देने में असमर्थता क्यों प्रकट कर रही हो? क्या कारण है...? जानती हो कि वार्षिक पूजनोत्सव के समय उसकी भी उपासना परमावश्यक है—फिर भी ऐसा कहती हो?...लाओ, देर न करो।'

'मुझे ऐसा प्रतीत होता है...नाथ...!' राजमहिषी आसन्न भय से कम्पित स्वर में बोली—'यदि मैं वह कल्याणकारी रत्नहार अपने से विलग करूंगी तो मेरी मृत्यु निश्चित है। बहुत बड़े अनिष्ट की आशंका मेरे हृदय में जागयक हो उठी है। जाने दीजिए प्राण...! प्राण-प्रतिष्ठा के मंत्रों से भी रत्नहार की उपासना हो सकती है, वैसा ही करें...।'

राजमहिषी कालचक्र के प्रभाव से, अब भी द्रविड़राज को सत्य बात न बता सकीं।

राजमहिषी के हठ से बाध्य होकर द्रविड़राज महापुजारी के पास आये और राजमहिषी का कथन अक्षरशः सुना दिया।

महापुजारी पौत्तालिक के शुभ्र ललाट पर दुश्चिन्ता की स्पष्ट रेखायें खिंच उठीं—'भवितव्य बलवान है...।' वे स्थिर वाणी में बोले—'तभी तो यह अघटनीय हो रहा है। अच्छा! प्राण-प्रतिष्ठा के मंत्रों द्वारा ही उस पवित्र रत्नाहार की उपासना हो जाएगी, मगर श्रीसम्राट! वह रत्नहार है तो सुरक्षित न...?'

'निस्सन्देह महापुजारी! राजमहिषी असत्य कभी कह नहीं सकतीं। एक पवित्र देवी पर अविश्वास करना अपने हृदय के साथ अपघात करना होगा...दाम्पत्य में अविश्वास का प्रवेश ही तो अनर्थ की सृष्टि करता है। मैं साम्राज्ञी के वचनों पर अविश्वास करने का स्वप्न में भी विचार नहीं कर सकता। इस विषय में निश्चिंत रहें, महापुजारी जी।

पूजनोत्सव के दिन खूब खुशियां मनाई गईं। महामाया का विधिवत् पूजन हुआ। पूजनोत्सव में पुष्पपुर के सभी गणमान्य नागरिक द्रविड़राज एवं बाल युवराज आदि उपस्थित थे।

तीन वर्ष के युवराज नारिकेल उस समय द्रविड़राज की गोद में बैठे हुए आश्चर्यचकित दृष्टि से चतुर्दिक देख रहे थे।

पूजनोत्सव समाप्त हो जाने पर महापुजारी पौत्तालिक ने महामाया के चरणों में रखा कुंकुम का पात्र उठाकर युवराज के शुभ ललाट पर थोड़ा-सा लगा दिया और हर्ष से चिल्ला उठे—'युवराज नारिकेल की जय।'

तत्पश्चात्त नगर के सम्पन्न नागरिक, युवराज के लिए अनेकानेक प्रकार की वस्तुएं, मणिमुक्ता-लसित थालों में लाकर भेंट करने लगे।

सभी थालें स्वर्ण-निर्मित थीं। किसी में थी बहुमूल्य रत्नराशि, किसी में थी जगत की यावत् सम्पदा को भी लज्जित कर देने वाली मणिमुक्तायें। सभी थालें श्वेत एवं बहुमूल्य वस्त्रों से आच्छादित थीं।

नागरिक गण अपने-अपने उपहार स्वतः लेकर युवराज के समक्ष उपस्थित होते थे। महापुजारी उनके करों से थाल लेकर युवराज के निकट ले जाते ओर उस पर का वस्त्र हटाकर उनमें की अतुल धनराशि युवराज को दिखाते, तत्पश्चात् युवराज के कोमल करों से स्पर्श कराकर वह थाल भूमि पर रख दिया जाता।

अन्तोगत्वा पुष्पपुर का धनाढ्य नागरिक किंशुक, अपने उपहार का थाल लेकर युवराज के समक्ष उपस्थित हुआ।

महापुजारी ने अपने हाथों से यह थाल लेकर युवराज को उसमें का अतुलित वैभव दिखाने के लिए उस पर से बहुमूल्य वस्त्र हटाया।

'झन्न...!'

एकाएक महापुजारी के कांपते हुए करों से छूटकर वह थाल झन्नाटे के साथ भूमि पर गिर पड़ा।

सभी व्यक्ति आश्चर्य एवं उद्वेग से उठ खड़े हुए, क्योंकि थाल का गिरना महान अपशकुन का द्योतक था।

महापुजारी की मुद्रा आश्चर्यजनक हो गई। वे खड़े-खड़े कांपने लगे—क्रोध एवं आवेगपूर्ण भंगिमा धारण किये हुए।

अंत में उन्होंने स्वतः झुककर वह बिखरी हुई रत्नराशि पुनः थाल में एकत्रित की और वस्त्र ढककर उसके लिए हुए पार्श्व के प्रकोष्ठ में चले गए। साथ ही द्रविड़राज को भी पीछे आने का संकेत करते गये।

द्रविड़राज आश्चर्यचकित एवं आशंकित भाव से महापुजारी के प्रकोष्ठ में आए।

'देख रहे हैं श्रीसम्राट...।' महापुजारी उद्दीप्त स्वर में बोले—'आप देख रहे हैं? अंततः अनर्थ, प्रलय और अनिष्ट की सृष्टि हो ही गई। तभी तो...तभी तो...।'

महापुजारी क्रोध से हाथ मलने लगे।

सम्राट ने झुककर उनका पैर पकड़ लिया—'क्या बात है महापुजारी जी...क्या अनर्थ हुआ? क्या अपराध हुआ?'

'अपराध...?' महापुजारी गरज पड़े—'पूछते हैं क्या अपराध हुआ...? देखिये! नेत्र खोलकर देखिये कि क्या हुआ, क्या होगा?'

महापुजारी ने बढ़कर उस थाल का वस्त्र हटा दिया।

द्रविड़राज ने एक थाल में पड़ी हुई अगम रत्नराशि देखी—एकाएक वे भी भय एवं उद्वेग से चौंक पड़े।

उन्होंने कम्पित करों से थाल से एक रत्नहार उठा लिया।

'ओह! वही रत्नहार...! हमारे कुल का प्रदीप...!' उनके मुख से अस्त-व्यस्त स्वर निकला।

उन्होंने वह रत्नहार मस्तक से लगाकर उसका सम्मान किया। पुनः सावधानी से उसे थाल में रख दिया।

'देखा आपने...!' महापुजारी ने अपने प्रज्जवलित नेत्र द्रविड़राज के प्रभाहीन मुख पर स्थिर कर दिये, 'कह दीजिए! अब भी कह दीजिये कि रत्नहार सुरक्षित है। अब भी कह दीजिये कि इस रत्नहार का प्रखरतर अपमान नहीं हुआ है—कह दीजिये श्रीसम्राट कि...।'

द्रविड़राज निस्तब्ध एवं निश्चेष्ट खड़े रहे। उनका शरीर कांप रहा था, परन्तु नेत्र निश्चल थे।

जीवन में आज प्रथम बार उन्हें राजमहिषी पर अविश्वास करने का अवसर मिला था।

द्रविड़राज के शासनकाल में यह पहली घटना थी कि एक धर्मपत्नी ने अपने पति से असत्य भाषण किया था। न्यायप्रिय द्रविड़राज क्रोध से दांत पीस रहे थे।

नगर सेठ किंशुक को बुलाया गया। वह कांपता हुआ आया।

उसने पूछने पर बताया—'यह रत्नहार मेरी पुत्री ने उद्यान में पाया था। मैं नहीं जानता था कि यह सम्राट के ही राजप्रकोष्ठ का है और चुराकर लाया गया है। मैंने निर्णय किया कि यह बहुमूल्य रत्नहार सम्राट के कोष में ही शोभावृद्धि पा सकता है। यही विचार कर यह तुच्छ भेंट लाया था, मुझे क्षमा करें श्रीसम्राट...!'

महापुजारी ने किंशुक को बहार जाने का सकेत किया

'श्रीसम्राट !'

'...' द्रविड़राज ने स्थिर दृष्टि से महापुजारी के मुख की और देखा ।

'इस पवित्र रतनहार का अफमान हुआ है, इसकी व्यवस्था करनी होगी, अन्यथा जानते है ? प्रलय हो जायेगा शांतिपाठ परमावश्यक है... महापुजारी रुके, पुनः बोले- साथ ही यदि आपका न्याय है तो राजमिहषी ने असत्य ने असत्य भाषण कर जो गुरुतर अपराध किया है उसके- उसके लिए दंड की व्यवस्था करनी ही होगी, श्रीसम्राट...।

द्रविड़राज धड़ाम से भूमि पर गिर पड़े।

□ □

□ □

प्रातःकाल राजमहिषी की जब निद्रा भंग हुई तो उनके शरीर में अत्यधिक पीड़ा थी। उनका हृदय न जाने किस भावी संकट की आशंका से कंपित

हो रहा था। इस समय वे गर्भवती थीं। गर्भावस्था के सात मास व्यतीत हो चुके थे।

यही कारण था कि हर समय उनके प्रकोष्ठ में कई परिचारिकायें उपस्थित रहती थीं।

परन्तु राजमहिषी को महान आश्चर्य हुआ, यह देखकर कि इस समय एक भी परिचारिका उपस्थित नहीं है और प्रकोष्ठ का द्वार बाहर से बंद किया हुआ है।

राजमहिषी उठकर द्वार के पास आई और उन्होंने उसे खोलने का व्यर्थ प्रयत्न किया।

उन्हें आश्चर्य हुआ एवं क्रोध भी! किसकी धृष्टता हो सकती है यह?

उन्होंने पार्श्व की छोटी-सी खिड़की खोलकर बाहर की ओर झांका। देखा, बर्हिद्वार पर सशस्त्र परिचारिकाओं का पहरा है।

राजमहिषी के पुकारने पर एक परिचारिका खिड़की के पास आई और झुककर अभिवादन करने के पश्चात् बोली—'मुझे दुख है कि राजमहिषी को प्रकोष्ठ से बाहर आने की अनुमति नहीं है...।'

'......!' साम्राज्ञी कांप उठीं, क्रोध से।

'और न ही हमें राजमहिषी के समक्ष कोई वस्तु उपस्थित करने की आज्ञा है...।'

'किसकी आज्ञा है यह?' गरज पड़ीं राजमहिषी।

'स्वयं श्रीसम्राट की...।' परिचारिका ने संयत स्वर में कहा और पुनः अभिवादन कर लौट गई।

राजमहिषी दुःखातिरेक से व्यग्र होकर धम्म से पलंग पर गिर पड़ीं।

□ □

□ □

‘कैसे कर सकूंगा यह सब महापुजारी जी। जिसे हृदय दिया है, उसे राजदण्ड कैसे दे सकूंगा..?’ अपने प्रकोष्ठ में बैठे हुए द्रविड़राज शोकमग्न हो रहे थे।

उनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होकर भूमि का सिंचन कर रही थी।

‘हे विधाता...! राजमहिषी ने यह सब क्या किया...? कैसा अनर्थ उपस्थित कर दिया उन्होंने?’

‘दण्ड देना होगा, श्रीसम्राट।’ महापुजारी बोले—‘यदि आप अपने न्याय को अटल रखना चाहते हैं तो ऐसा करना ही होगा।’

‘नहीं कर सकता मैं ऐसा, महापुजारी जी! आपके चरणों पर मस्तक रखकर कहता हूं कि यह कार्य करने में सर्वथा असमर्थ हूं मैं। क्षमा प्रदान कीजिये...।’ द्रविड़राज रो पड़े—‘राजमहिषी का न्याय मैं आपके ऊपर छोड़ता हूं। आप ही उनका न्याय कीजिये...आप ही विचारिये-जिस मुख से मैंने ‘प्रिय’ जैसा शब्द उनके लिए प्रयोग किया है, उसी मुख से कठोर वाक्य कैसे निकाल सकता हूं?’

‘आप भूल रहे हैं...भूल रहे हैं आप, श्रीसम्राट...! अपनी दुर्बलता के वशीभूत होकर आप अपनी सारी प्रजा को यह दिखा देना चाहते हैं कि आपका हृदय कितना क्षुद्र एवं दुर्बल है। आप अपनी सारी प्रजा पर यह प्रकट कर देना चाहते हैं कि जिस न्याय का पालन आप प्रजा से चाहते हैं, स्वयं आप उसका पालन करने में असमर्थ हैं। आज आप सब पर यह प्रकट कर देना चाहते हैं कि द्रविड़राज का न्याय ‘न्याय’ नहीं प्रवंचना मात्र रहा है। आज आप सबको यह बता देना चाहते हैं कि द्रविड़ वंश की सारी न्यायप्रियता पर आपने प्रखरतर कालिमा पोत दी है...।’

महापुजारी दो पग आगे बढ़ आये—‘क्या अपनी आंखों से आप यह देख सकते हैं, श्रीसम्राट! प्राणों की बलि देकर न्याय का पालन करने वाले

द्रविड़राज, क्या आप एक छोटी-सी दुविधा में पड़कर न्याय की हत्या कर देंगे...? क्या आप...?'

'......' द्रविड़राज स्थिर खड़े रहे।

केवल एक बार उन्होंने अपनी अनामिका में पड़ी हुई मुक्ताजड़ित मुद्रिका पर दृष्टि निक्षेप की।

'भूल जाइए श्रीसम्राट....। मोहमाया को भूल जाइये, यावत् जगत को दिखा दीजिये कि द्रविड़राज का न्याय अटल है, अचल है...हिमराज की भांति!'

'ऐसा ही होगा महापुजारी जी...!' सम्राट ने अपना हृदय संयत कर लिया। अंतराल में उठते हुए भयानक उद्वेग का उनकी न्यायशीलता से शमन कर दिया।

'द्रविड़राज का न्याय अटल है और अटल रहेगा। न्याय के लिए हृदय का बलिदान, पत्नी का बलिदान, सबका बलिदान करने को प्रस्तुत हूं मैं!'

'श्रीसम्राट की जय हो...!' महापुजारी ने आशीर्वाद दिया।

द्रविड़राज गुनगुनाते रहे—'न्याय अटल है और अटल रहेगा...।'

'अटल कैसे रहेगा, श्रीसम्राट!' महामंत्री करबद्ध खड़े होकर द्रविड़राज से बोले—'श्रीसम्राट के न्याय का विरोध करने के लिए इस समय सारी प्रजा प्रस्तुत है। राजमहिषी को दण्ड न दिया जाए, यही प्रजा की आकांक्षा है...।'

'प्रजा की यह आकांक्षा प्रलयंकारी है महामंत्री...!' गरजे द्रविड़राज —'इससे द्रविड़राज के शुभ न्याय पर कलंक की कालिमा लगती है। प्रजा की यह आकांक्षा सफलीभूत नहीं हो सकती। राजमहिषी को न्यायदण्ड भोगना ही पड़ेगा।'

'अपने हृदय की ओर देखिए, श्रीसम्राट! टुकड़े-टुकड़े तो हो गया है आपका संतप्त हृदय! इन दो दिनों में ही आपकी मुखश्री प्रभावहीन होकर

एकदम म्लान पड़ गई है, फिर भी आप राजमहिषी को दण्ड देंगे? अपनी सबसे प्रिय वस्तु का बलिदान करेंगे?'

'केवल प्रियतमा का बलिदान ही नहीं, प्राणों का भी बलिदान कर दूंगा न्याय के लिए, महामंत्री जी! न्याय ही तो शासनकर्ता का भूषण है। जिस न्याय का प्रतिपालन शासनकर्ता अपनी असहाय प्रजा से चाहता है। उसी न्याय पर आरूढ़ होकर स्वयं उसे भी अग्रसर होना चाहिये। यही उसका कर्तव्य है। यह नहीं कि प्रजा के दंड के लिए तो नित्य नये-नये नियम बनें और शासनकर्ता के लिए सदैव यावत् जगत की सम्पदा उसके चतुर्दिक नृत्य करती रहे, यह कहां का न्याय है?' द्रविडराज एक ही सांस में सब कुछ कह गये।

'आपको राजमहिषी की गर्भावस्था पर ध्यान देना चाहिये, श्रीसम्राट।'

'व्यर्थ है...! न्याय के प्रतिपालन में किसी भी अवस्था पर ध्यान देना अन्याय होगा।'

'श्रीसम्राट, मुझे प्राणदान दें...न्याय तो यही है...।'

'यह अन्याय है।' द्रविड़राज का सारा शरीर क्रोध से प्रकम्पित हो उठा—'अन्याय है यह? आज आप मुझे न्याय की दीक्षा देने आये हैं? जो अब तक न्याय का पोषक एवं उपासक रहा है, उसे आप न्याय का मार्ग दिखाने का साहस करते हैं, महामंत्री जी...?' क्रोध से हुंकार उठे सम्राट—'कहां थे न्याय के पृष्ठ-पोपक अब तक, जबकि मैं स्वर्ण सिंहासन पर आसीन होकर न्याय दण्ड हाथों में लेकर, अभागी प्रजा के अपराधों का न्याय किया करता था? कहां थे आप जब कि मैं एक साधारण अपराधी को भी न्याय की रक्षार्थ कठोरतम दण्ड देता था? कहां थे आप, जबकि मेरे अटल न्याय के कारण कितने ही अपराधी मृत्यु दण्ड पाते थे, कितने ही देश-निर्वासन सहन करते थे। कहां थे आप जब मैं अपने न्यायासन पर बैठकर प्रजा का न्याय करता था। आपका न्यायपूर्ण हृदय कहां था तब?''

‘.........’ महामंत्री निस्तब्ध खड़े थे नीचा सिर किये हुए द्रविड़राज के सम्मुख।

‘आज जबकि स्वयं राजमहिषी ने एक असत्य बात कहकर गुरुतर अपराध किया है और मैं स्वयं अपनी पत्नी को राजदण्ड देने जा रहा हूं—तो आप आये हैं मुझे न्याय की याद दिलाने, आप आये हैं मुझे अन्याय और न्याय का अंतर बताने। असत्य बोलना कितना बड़ा अपराध है वहे भी अपने ही पति से...। भूल गये महामंत्री! इसी अपराध में कितनों के ही प्राण उनके शरीर से विलग कर दिये हैं—फिर भी आप ऐसा कहते हैं? जाइए महामंत्री जी, न्याय की व्यवस्था की कीजिये। द्रविड़राज ने जिस प्रकार आज तक अपनी प्रजा का न्याय किया है, उसी प्रकार राजमहिषी का भी न्याय करेंगे। न्याय की सीमा में राजा-प्रजा सभी समान हैं। न्याय अटल है और अटल रहना ही चाहिये। आज मैं अपने स्वार्थ हेतु प्रजा के नेत्रों में निकृष्ट बनना नहीं चाहता। प्रजा भी देख ले कि स्वयं द्रविड़राज की प्राण-प्रिय राजमहिषी त्रिधारा भी, द्रविड़राज के अटल न्याय का सीमोल्लंघन करने का साहस नहीं कर सकती। आज सारी प्रजा नेत्र खोलकर देखे कि द्रविड़राज का जो न्यायदण्ड समस्त प्रजा के लिए है, वही राजमहिषी के लिए भी है...।’

‘परन्तु श्रीसम्राट...!’

‘शांत रहिये, महामंत्री...! द्रविड़राज आगे एक शब्द भी सुनने के आकांक्षी नहीं। आप जा सकते हैं।’

महामंत्री चले गए और द्रविड़राज चिंतातिरेक से चेतनाहीन होकर भूमि पर लुढ़क गए।

□ □

□ □

आज वह अशुभ दिन था, जब सारी प्रजा की आकांक्षा के विरुद्ध राजमहिषी त्रिधारा को असत्य कहने के महान अपराध में दण्डाज्ञा सुनाई जाने वाली थी।

राजसभा में तिल रखने तक का स्थान नहीं था। महापुजारी उच्च आसन पर आसीन थे। उनके कुछ नीचे द्रविड़राज का सिंहासन था। महामंत्री खड़े हुए अभियोग की व्यवस्था में व्यस्त थे। नगर के सभी छोटे-बड़े नागरिक यथोचित आसीन थे। राजसभा में मृत्यु जैसी निस्तब्धता छाई हुई थी।

सभी के नेत्र द्रविड़राज के शुष्क एवं प्रभावहीन मुखमंडल पर केंद्रित थे। द्रविड़राज शून्य दृष्टि से सामने की ओर देख रहे थे। कभी-कभी उनके नेत्रों के कोरों पर बहुत रोकने पर भी अश्रु कण झलक उठते थे।

दक्षिण की ओर झिलमिलाती एक श्वेत यविनका पड़ी थी, उसकी ओट में वन्दिनी राजमहिषी त्रिधारा अपनी एक परिचारिका के साथ उपस्थित थी।

'श्रीसम्राट राजमहिषी से यह पूछना चाहते हैं कि राजमहिषी ने वह पवित्र रत्नाहार कहां रखा है?' महामंत्री की संयत वाणी राजसभा में गूंज उठी।

चारों ओर निस्तब्धता व्याप्त थी।

केवल यवनिका की ओट से राजमहिषी की परिचारिका ने उत्तर दिया—'राजमहिषी का कहना है कि वह रत्नहार यत्नपूर्वक मणिमंजूषा में सुरक्षित है...।'

पुनः शांति को साम्राज्य छा गया।

द्रविड़राज ने एक बार क्रोध से दांत पीसे, राजमहिषी का पुनः असत्य भाषण सुनकर।

'क्या राजमहिषी यह रत्नहार पहचान सकती हैं...?' महामंत्री ने वह पवित्र रत्नाहार लेकर उस श्वेत यवनिका की ओर बढ़ा दिया।

परिचारिका ने अपना हाथ यवनिका से थोड़ा बाहर निकालकर वह रत्नहार ले लिया।

वह पवित्र रत्नहार देखते ही राजमहिषी पर जैसे अकस्मात् वज्रपात हुआ। उनके नेत्रों के समक्ष घनीभूत अंधकार छा गया। अपनी इस दुर्दशा का कारण आज उनकी समझ में आया। वे महान् पश्चाताप से दग्ध हो उठीं।

महामंत्री का स्वर पुनः सुनाई पड़ा—'श्रीसम्राट पुनः पूछते हैं कि राजमहिषी उस रत्नहार को पहचान सकीं या नहीं?'

'.............' यवनिका की ओट से परिचारिका का स्वर आया—'राजमहिषी ने इस पवित्र रत्नहार को पहचान लिया है।'

द्रविड़राज की भंगिमा उद्दीप्त हो उठी। उन्होंने झुककर महामंत्री के कान में जाने क्या कहा। महामंत्री उच्च स्वर में बोले—'श्रीसम्राट दृढ़ स्वर में आज्ञा देते हैं कि साम्राज्ञी शीघ्र बतायें कि उन्होंने स्वयं श्रीसम्राट से असत्य कहकर उन्हें अंधकार में रखने का दुस्साहस क्यों किया?'

'राजमहिषी लज्जित हैं इसके लिए...।' परिचारिका ने उत्तर दिया।

'उन्हें दण्ड का भागी होना पड़ेगा।'

'राजमहिषी को सहर्ष स्वीकार है।'

महामंत्री बैठ गए।

द्रविड़राज ललाट पर उंगली रखकर न जाने क्या विचार करने लगे। राजसभा में सूचीभेद्य शांति थी। एक शब्द भी सुनाई नहीं पड़ रहा था।

महापुजारी पौत्तालिक स्थिर आसनासीन थे। सभी सभासद कम्पित हृदय से उन वाक्यों की प्रतीक्षा कर रहे थे, जिन पर राजमहिषी का भविष्य अवलम्बित था।

एकाएक द्रविड़राज अपना स्वर्णासन त्याग उठ खड़े हुए। सभासदों का हृदय अज्ञात आशंका से धड़क उठा, तीव्र वेग से।

द्रविड़राज ने मन-ही-मन महापुजारी को प्रणाम किया, पुनः संयत वाणी में बोले—'राजमहिषी को आजन्म निर्वासन की दण्डाज्ञा की जाती है।'

‘श्रीसम्राट...।’ एकाएक सभी सभासद आवेग से उठ खड़े हुए।

‘यथास्थान आसीन हों, आप लोग...।’ द्रविड़राज का कठोर गर्जन सुनाई पड़ा—‘राजाज्ञा का दृढ़ता से पालन होगा।’

‘राजमहिषी को राजदण्ड स्वीकार है।’ परिचारिका का स्वर कर्णगोचर हुआ।

यवनिका की ओट से राजमहिषी के सिसकने का अस्फुट स्वर सुनाई पड़ा —‘राजमहिषी श्रीयुवराज से मिलना चाहती हैं।’

‘नहीं।’ द्रविड़राज बोले—‘एक कलुषित आत्मा को एक पवित्र आत्मा से साक्षात् करने की आज्ञा नहीं दी जा सकती। निर्वासन की आज्ञा का तुरंत पालन होना चाहिये?’

यवनिका की ओट में खड़ी राजमहिषी त्रिधारा ने अपने नेत्र पोंछे और उस पवित्र रत्नहार को माथे से लगाकर अपने कंठ प्रदेश में डाल लिया।

दो किरात आगे बढ़कर राजमहिषी के साथ हो लिए। आज तक जो ऐश्वर्य की सुखमयी गोद में जीवन व्यतीत करती आ रही थी, वह अपने पति से अटल न्याय की रक्षार्थ आजन्म निर्वासन का दण्ड सहन करने के लिए सहर्ष प्रस्तुत हो गई।

द्रविड़राज चेतनाहीन होकर सिंहासन पर लुढ़क पड़े। महामंत्री घबराकर सिंहासन की ओर दौड़ पड़े।

चार

‘आज उस घटना को व्यतीत हुए लगभग बीस वर्ष हो चुके हैं, चक्रवाल।’ द्रविड़राज अवरुद्ध स्वर में बोले—‘परन्तु मैं अब तक राजमहिषी को भूल नहीं सका हूं। वह न्याय था, जिसका मैंने पालन किया था। अब शोकाग्नि में भस्म होता हुआ, उनके प्रति हृदय में जो अगाध प्रेम निहित है, उसका प्रतिपालन मैं कर रहा हूं, चक्रवाल.....।’

चारण चक्रवाल द्रविड़राज के समक्ष अपनी निस्तब्ध वीणा लिए हुए चुपचाप बैठा था। अभागे द्रविड़राज की दुर्दशा पर अश्रु कणों की वर्षा करता हुआ।

'.......' निर्वासन के पश्चात् कई बार मैंने उनकी खोज की, जंगल-पहाड़, नगर गांव सभी स्थान खोज डाले, परन्तु उस देवी का पता न लगा। वह गर्भवती थीं—मेरे हृदय का एक अंश लिए वह न जाने कहां विलुप्त हो गईं, चक्रवाल! आज सोचता हूं—मैंने न्याय की रक्षार्थ उन्हें आजन्म निर्वासन का दंड दिया था, तो क्या उस प्रेम की रक्षार्थ मैं स्वयं, यह राजपाट त्यागकर उनके साथ भयानक वन में जाकर नहीं रह सकता था...? उस समय मैंने कितनी भारी भूल की थी कि मुझे अब तक दाहक अग्नि से भस्मीभूत होना पड़ रहा है...।'

'धैर्य, संतोष और सहनशीलता आपका भूषण होना चाहिए, श्रीसम्राट।' चक्रवाल ने संयत स्वर में कहा।

उस युवक गायक के मुख पर असीम गंभीरता एवं प्रगाढ़ सहानुभूति नर्तन कर रही थी।

'कब तक धैर्य रखूं चक्रवाल....! तुम्हारा व्यथापूर्ण गायन सुनकर तो हृदय और भी व्यग्र हो उठा है। न जाने क्यों तुम्हें सदैव व्यथापूर्ण गायन ही प्रिय लगते हैं...?'

'सुख प्रदान करने वाले गीतों से, मेरा स्वर असंयत हो जाता है, श्रीसम्राट....!'

'असंयत हो जाता है....? ऐसा क्यों अनुभव करते हो, वत्स.....? जिसकी गायनकला मरणोन्मुख को जीवन प्रदान करने वाली है, असमय में भी जल-वर्षा करने वाली है, दिवस के प्रखर प्रकाश में भी दीपक प्रज्जवलित करने वाली है---उसका स्वर कभी असंयत हो सकता है, चक्रवाल! जब तुम वीणा के तारों से खेलते हुए गाने लगते हो तो....परन्तु देखना, युवराज से यह सब तुम कदापि न कहना, नहीं तो उसे अपनी माता

की करुण कथा सुनकर महान दुख होगा। अभी तक मैंने उससे इस गाथा को पूर्णतया गुप्त रखा है।' एकाएक द्रविड़राज ने पूछा—'युवराज अभी तक आखेट से नहीं लौटा...?'

द्वारपाल द्वार पर आकर खड़ा हो गया था और द्रविड़राज ने यह बात उसी से पूछी थी।

'श्रीयुवराज आहत अवस्था में आखेट से पधारे हैं। अनुचर उन्हें शैया पर लिटाकर ला रहे हैं।' द्वारपाल ने विनम्र स्वर में कहा।

द्रविड़राज व्यग्र स्वर में बोले उठे—'आहत अवस्था में, हुआ क्या है उसे....?'

वे दौड़ पड़े युवराज के प्रकोष्ठ की ओर। चक्रवाल भी उनके पीछे-पीछे आया।

आहत एवं चेतनाहीन युवराज एक पलंग पर पड़े थे।

दौड़ते हुए सम्राट आ पहुंचे—'क्या हुआ युवराज...?' उन्होंने पूछा।

परन्तु युवराज बोल न सके, वे चेतनाहीन थे।

कई घड़ी की अविराम सेवा के पश्चात वे चैतन्य हुए तो द्रविड़राज के हर्ष का पारावार न रहा, अपनी अमूल्य निधि का सुरक्षित अवलोकर कर उनहोंने पूछा—'क्या हो गया था, युवराज?'

'भयानक वन में शूकर का पीछा किया था मैंने। एक वृक्ष की शाखा से मस्तक टकरा गया और वह भयानक घाव...ओह...!' मस्तक हिल जाने से युवराज कराह उठे—'और एक किरात कुमार मिल गया था, उससे भी युद्ध हो गया...।'

'युद्ध हो गया...?' द्रविड़राज उतावली के साथ पूछ बैठे।

'हां, उसकी वीरता देखकर मुझे अत्यंत आश्चर्य हुआ, पिताजी...!'

‘विजय किसकी हुई…? द्रविड़राज की वीरता में कलंक कालिमा तो नहीं लगी?’

‘मैं आहत हो गया था, पिताजी।’

‘आहत हो गये थे तो क्या हुआ? तुम्हें प्राण देकर भी अपने क्षत्रियत्व की लज्जा रखनी परमावश्यक थी…।’

‘मैंने ऐसा ही किया है पिताजी! मैं तब तक युद्ध करता रहा, जब तक कि अशक्त होकर भूमि पर न गिर पड़ा—मैंने निश्चय कर लिया है कि शीघ्र ही हम दोनों किसी स्थान पर मिलकर अपने बलाबल का निर्णय करेंगे। देखें हमारी यह आकांक्षा कब सफल होगी…।’ युवराज शिथिल वाणी में बोले।

□ □

□ □

महामाया के सुविशाल राजमंदिर के प्रांगण में कई प्रकोष्ठ निर्मित थे।

जिनमें एक में महापुजारी पौत्तालिक, दूसरे में युवक गायक चक्रवाल एवं तीसरे में अप्सरा-सी सुंदरी किन्नरी निहारिका, ये तीन ही व्यक्ति निवास करते थे।

निहारिका, महामाया मंदिर की किन्नरी थी। यौवनराशि द्वारा प्रोद्भासित उसकी मधुयुक्त मुखराशि अतीव मनोहर दृष्टिगोचर होती थी।

उसकी सघन घटा जैसी श्यामल केश-राशि का एकाध केश हवा का सहारा पाकर, जब उसके आरक्त कपोलों पर नृत्य करने लगता तो ऐसा लगता था मानो समग्र संसार का सौंदर्य उस कलामय किन्नरी के कपोलों पर उतर आया है।

उसके मृगशावक सदृश नयनों में उपस्थित थी तीव्र मादकता एवं मधुरिमा।

काली-काली पुतलियां ऐसी प्रतीत होती थीं, मानो जगत की सारी सुषमा का प्रवेश हो उनमें। जब उसके रक्त-रंजित अधर हर्षातिरेक उत्फुल्ल होकर चतुर्दिक अपनी हृदयवेधी मुस्कान बिखेर देते तो ऐसा ज्ञात होता,जैसे कलाधर अपनी सम्पूर्ण कलाओं सहित प्रकाशमान हो उठा है।

उसके सुपुष्ट वक्षस्थल पर कसी हुई रत्नजड़ित लसित कंचुकी, कटिप्रदेश में झलझलाता हुआ लहंगा एवं पैरों में लसित नुपुरराशि वास्तव में ऐसे लगते थे मानो देवराज की कोई अप्सरा पथभ्रांत होकर इस शस्यश्यामला भूमि पर चली आई हो।

गायक चक्रवाल का प्रकोष्ठ किन्नरी निहारिका के प्रकोष्ठ के पार्श्व में ही था। दोनों अपनी-अपनी कला में उत्कृष्ट थे। चक्रवाल चारण था, उसकी गायन-कला अपूर्व थी—निहारिका किन्नरी थी, उसकी नर्तन-कला मुग्धकारी थी।

परन्तु दोनों कला के भिन्न-भिन्न अंगों में पारंगत होते हुए भी एक न हो सके थे। उनके व्यवहार, उनकी शालीनता में कोई अंतर न था। अवकाश मिलने पर दोनों एकांत में बैठकर वार्तालाप करते थे।

पूजनोत्सव से लौटकर कभी-कभी निहारिका जब अपने प्रकोष्ठ में आकर कपाटों को भीतर से बंद कर, वस्त्र परिवर्तन करने लगती—तभी चक्रवाल आ पहुंचता। द्वार पर खट्ट-खट्ट की ध्वनि सुनकर निहारिका अनुमान कर लेती कि वह चक्रवाल है।

फिर भी वह पूछती—‘कौन है?’

‘मैं हूं…!’ बाहर खड़ा हुआ चक्रवाल कहता।

‘जाओ इस समय!’ किन्नरी अनचाहे कह देती।

‘मैं नहीं जाता—देखूं कब तक द्वार नहीं खुलता।’ चक्रवाल द्वार पर जमकर बैठ जाता, परन्तु कान भीतर की ओर लगे रहते।

भीतर से वीणा-विनिन्दित स्वर में एक मधुर रागिनी निकल पड़ती—'तुम आग लगाने क्यों आये?'

चक्रवाल चुप रहता। भीतर से पुनः वही ध्वनि यावत् प्रकृति को विकल करती हुई प्रतिध्वनित हो उठती—'तुम आग लगाने क्यों आये?'

चक्रवाल का गायक हृदय स्थिर न रह पाता। वह झूम-झूमकर गाने लगता—

'मधुर स्मृति आलिंगन—देवता मधुर पीड़ित चुम्बन!

कण-कण में तड़पन और जलन...

अंदर से रागिनी निकलती—

मेरे उर की सूखी बगिया में, तुम आग लगाने क्यों आये?

तुम आग जलाने क्यों आये?'

गायन समाप्त हो जाता और प्रकोष्ठ के द्वार खुल जाते।

चक्रवाल उठकर मन्थर गति से प्रकोष्ठ के भीतर प्रवेश करता। उसकी गंभीरतापूर्ण मुखाकृति पर तनिक भी हास्य की रेखा प्रस्फुटित न होती।

वह शून्य दृष्टि से किन्नरी की ओर निहारकर पुकारता—'किन्नरी...!'

'............................' निहारिका अपलक नयनों द्वारा चक्रवाल की सिद्धहस्त अंगुलियों का निरीक्षण करती रहती।

ये अंगुलियां, जो वीणा के चमचमाते तारों पर अविराम गति से दौड़ती हुई प्रकृति के कोलाहलपूर्ण वातावरण को शांत कर देने की क्षमता रखती थीं।

'एक बात पूछूं?' चक्रवाल ने प्रश्न किया।

'पूछो न...?' कहते-कहते किन्नरी की दंत-पंक्तियां सघन घन में विद्युत छटा-सी आलोकित हो उठतीं।

'आज उपासना समाप्त हो जाने पर जब श्रीयुवराज के शुभ ललाट पर कुंकुम लगाने के लिए उद्यत हुई थी तो मैंने ध्यानपूर्वक देखा था कि उनके सामने तुम्हारे हाथ कांप उठे थे। तुमने अपने नेत्रों की सारी सुषमा श्रीयुवराज के मुखमंडल पर केंद्रित कर दी थी। तुम्हारे उज्ज्वल मुख पर लज्जाजनित सौंदर्य प्रस्फुटित हो उठा था। जब तुमने थोड़ा-सा कुंकुम उठाकर श्रीयुवराज के मस्तक पर लगाया था, उस समय तुम्हारे कम्पित करों ने अपना कार्य सुन्दरतापूर्वक पूर्ण नहीं किया था। फलतः कुंकुम का थोड़ा-सा भाग युवराज की नासिका पर गिर गया था। श्रीयुवराज के अधरद्वय, मधुर मुस्कान की प्रभा से परिपूर्ण हो उठे थे—तुम्हारी असावधानी देखकर! जीवन में आज प्रथम बार श्रीयुवराज तुम्हारी ओर देखकर मुस्कराये थे...यों तो तुम नित्यप्रति ही महामाया के मंदिर में श्रीयुवराज एवं श्रीसम्राट के समक्ष नृत्य करती हो, उपासना समाप्त हो जाने पर प्रतिदिन तुम अपने करों द्वारा श्रीयुवराज के देदीप्यमान मस्तक पर कुंकुम की रेखा खींचती हो, परन्तु आज तक श्रीयुवराज ने तुमसे तनिक भी सम्भाषण नहीं किया था...।'

'कैसे सम्भाषण कर सकते हैं, श्रीयुवराज...?' किन्नरी निहारिका ने हृदय की आंतरिक पीड़ा को एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर बहिर्गत किया और बोली—'वे हैं एक परमोज्ज्वल कुल के अनमोल रत्न और मैं हूं एक अधम किन्नरी। मेरे और उनके मध्य कहां गगनमण्डल का एक महान् अंतर है, चक्रवाल...। कहां निर्मल धवल चन्द्र और कहां एक तारिका।'

'एक बात तो है! लोकलज्जा एवं बाह्याडम्बर के वशीभूत होकर वे चाहे तुमसे संभाषण न कर सकते हों, मगर उनके हृदय में तुम्हारे प्रति एवं तुम्हारी कला के प्रति अपार आदर एवं प्रेम है। मुझसे बहुत बार वे तुम्हारी नर्तन-कला की प्रशंसा कर चुके हैं। आज भी तुम्हारे विषय में मुझसे बहुत-सी बातें कर रहे थे...।'

'सच?'

'और नहीं तो क्या?'

'आजकल श्रीयुवराज मंदिर में नहीं पधार रहे हैं?'

'कई दिन पूर्व वे आखेट को गये थे, वहीं आहत हो गये थे। आशा है कल वे राममंदिर में पधारेंगे। सच पूछो तो युवरज के बिना पूजनोत्सव सूना-सा लगता है। मुझसे गाया नहीं जाता और तुम्हारी तो सम्पूर्ण कला ही फीकी हो जाती है, श्रीयुवराज को अनुपस्थित देखकर। बड़े सहृदय हैं, श्रीयुवराज...।'

बाहर से चरणपादुका का खट-खट शब्द हुआ और दोनों का वार्तालाप रुक गया।

'महापुजारी जी आ रहे हैं...।' चक्रवाल ने कहा।

और तुरंत ही उसकी मधुर रागिनी ने प्रकोष्ठ की दीवारों को गुंजित कर दिया—'हरि हरि बोल प्राण पपीहे हरि हरि बोल।'

सधे हुए पक्षी की भांति किन्नरी निहारिका ने अपनी भंगिमा ठीक कर ली।

उसके अवयव कलार्पण रीति से चक्रवाल के गायन का भाव प्रदर्शित करने लगे।

चक्रवाल की कला के साथ किन्नरी की कला को सम्मिश्रण होने लगा।

महापुजारी के समक्ष यह प्रदर्शित करने के लिए कि वे दोनों वहां गायन और नृत्य का अभ्यास कर रहे हैं, उनका यह कृत्रिम अभिनय अपूर्व था।

चक्रवाल की मधुर स्वर लहरी प्रवाहित हो रही थी—मेरे जीवन की धारा में जाग उठे मंजुल कल्लोल, प्राण-पपीहे हरि हरि बोल।

चक्रवाल का गायन एवं किन्नरी का नर्तन रुक गया। दोनों ने आगे बढ़कर महापुजारी के चरण स्पर्श किये।

महापुजारी ने उनकी मंगल कामना की—'क्या हो रहा था चक्रवाल?' उन्होंने पूछा।

‘कुछ नहीं। आज एक नये गायन पर किन्नरी की कला की परीक्षा ले रहा था।’

‘अच्छा...! परन्तु आज तुम श्रीयुवराज के समक्ष उपस्थित नहीं हुए। अभी थोड़ी देर पहले वे तुम्हारे विषय में चर्चा कर रहे थे। अच्छा हो कि तुम अपनी वीणा लेकर उनके प्रकोष्ठ में चले जाओ और अपने गायन द्वारा कुछ समय तक उनका मनोरंजन करो...।’

‘जो आज्ञा।’

‘निहारिका! अब तुम विश्राम करो।’ महापुजारी ने किन्नरी को आज्ञा दी—‘श्रीयुवराज अस्वस्थ हो गए हैं, कल प्रातःकाल वे राजमंदिर में पधारेंगे। उनका स्वागत करने के लिए तुम्हें अपनी सम्पूर्ण कलाओं की मंजूषा खोल देनी है।’

महापुजारी चक्रवाल को लेकर किन्नरी के प्रकोष्ठ से बाहर चले गए।

किन्नरी ने विश्राम की अंगड़ाई ली और स्वर्ण के दर्पण के समक्ष वह आ खड़ी हुई।

यह दर्पण एक दीर्घाकार पट पर न जाने किस वस्तु का आवरण चढ़ाकर निर्मित किया था कि वह आधुनिक दर्पणों से भी अधिक स्वच्छ एवं प्रकाशमान था।

किन्नरी ने उस प्रोज्वल दर्पण में अपने मादक सौन्दर्य का अवलोकन किया। कितना आकर्षक एवं कितना उन्मादकारी था उसका देदीप्यमान सौंदर्य।

□ □
□ □

रात्रि के अंतिम प्रहर में नीलाकाश पर दो-चार तारिकायें नृत्य कर रही थीं।

रात्रि का प्रगाढ़ अंधकार कलान्त-सा प्रतीत होता था और उसके कालिमापूर्ण पट पर प्रकाश की प्रोज्वलता क्रमशः अपना अधिकार स्थापित करती जा रही थी।

पूर्वाकाश शीघ्र ही पदार्पण करने वाली ऊषा के शुभागमन का स्वागत करने को पूर्णतया प्रस्तुत था। सुखद नीड़ों में से पक्षियों का गुंजारित कलरव क्रमशः बढ़ रहा था।

पुष्पपुर राजप्रासाद के पार्श्व में ही स्थित था महामाया का सुविशाल राजमंदिर, जहां अपने प्रकोष्ठ में एक छोटी-सी खिड़की के पास बैठा हुआ गायक चक्रवाल आकाश-मण्डल की क्षुद्र तारिकाओं का कल्लोल देख रहा था, साथ ही उसकी स्वरागिनी यावत् प्रकृति की निस्तब्धता को बेंधती हुई थिरक रही थी—

''रात्रि शेष हो चली अलसा रहे गगन के तारे।

दिन से चली अंक भर मिलने, अब विभावरी हाथ पसारे।

यह उनका नित्य का कार्य था। इसमें तनिक भी विश्रृंखलता अथवा तनिक भी अव्यवस्था नहीं आ पाती थी।

प्रतिदिन घड़ी भर रात्रि रहे, उसकी निद्रा टूट जाती।

निद्रा टूटते ही सर्वप्रथम वह महामाया का स्मरण करता। तत्पश्चात, महापुजारी को मन-ही-मन प्रणाम कर प्रकोष्ठ की छोटी-सी खिड़की पर जा बैठता।

प्रकृति की निःस्तब्धता एवं प्रातःकाल के सुखद समीर का मृदु संदेश पाकर उसके हृदय की गायन कला प्रस्फुटित होने लगती।

वह अपनी कला में पूर्णतया तन्मय हो जाता। उसका गायन सुनकर महापुजारी जी की निद्रा खुलती। किन्नरी जाग पड़ती एवं मंदिर के पार्श्व में स्थित राजप्रकोष्ठ के सभी व्यक्ति, द्रविड़राज, युवराज आदि उठ बैठते।

चक्रवाल का गायन उनके लिए प्रातःजागरण का मधुर संदेश था।

सब जाग पड़ते, परन्तु चक्रवाल का गायन न रुकता—तब तक, जब तक कि किन्नरी प्रकोष्ठ में आकर न कहती—'रहने दो चक्रवाल! सब जाग पड़े हैं। अब तुम भी स्नानादि से निवृत्त होकर शीघ्र ही मंदिर में चलने की तैयारी करो...।'

नित्य की भांति आज भी किन्नरी उसके प्रकोष्ठ में आयी—'सब तो जाग पड़े हैं और तुम गाते ही रहोगे क्या...?' उसने कहा।

चक्रवाल का गायन-प्रवाह रुक गया।

'आज युवराज पधारेंगे, शीघ्र ही तैयार होकर आओ....।' कहकर वह तीव्र गति से अपने प्रकोष्ठ की ओर चली गई।

महामाया के पूजन का उत्सव दर्शनीय होता था।

अगणित सुगंधित द्रव्य अग्निकुण्ड में पड़ते थे, वायु उस सुगंधित द्रव्य को ग्रहण कर वातावरण को सुरभित किया करती थी।

महामाया की रत्नजड़ित प्रतिमा, हृदय में अपूर्व भक्ति का स्रोत प्रवाहित कर देती थी। महामाया की प्रतिमा के समक्ष एक स्वर्णनिर्मित थाल में कुंकुम एवं आरती हेतु कपूर रहता था।

द्रविड़राज एवं महामंत्री का पूजनोत्सव के समय मंदिर में उपस्थित रहना अनिवार्य था।

आज बहुत दिनों के पश्चात युवराज ने राजमंदिर में पदार्पण किया। द्रविड़राज, युवराज एवं महामंत्री—सब यथायोग्य स्वर्णासनों पर आसीन थे।

आज किन्नरी निहारिका की वेशभूषा अपूर्व थी।

इस समय वह चक्रवाल के पार्श्व में मस्तक नीचा किये हुए, तर्जनी को ठुड्डी पर रखकर कुछ सोचने की सी मुद्रा में बैठी थी—मगर बैठने में भी उस कलामयी युवती की अनोखी कला प्रकट हो रही थी। उसके प्रत्येक अंग संचालन में अपूर्व कला का सम्मिश्रण था। अपूर्व थी वह कलामयी।

पूजन समाप्त हुआ। महापुजारी ने महामायी का विधिवत् पूजन किया।

प्रबल घंटारव से सुविशाल मंदिर गुंजायमान हो उठा। शंखध्वनि वातावरण में गुंजरित होने लगी।

द्रविड़राज एवं युवराज आदि ने महामाया एवं महापुजारी को मन-ही-मन प्रणाम किया।

चक्रवाल सजग हुआ।

अब उसका कार्य प्रारंभ होने वाला था। उसने अपनी संचित मधुरता का एकत्रीकरण किया—तुरंत ही महामाया का गुणगान उसकी स्वर-लहरी से फूट पड़ा था—

'वर दे, शत्रु विनाशिनी वर दे!'

साथ ही उसके अभ्यस्त अंगुलियां वीणा के तारों पर जा पड़ीं। तार मधुर स्वर में झंकृत हो उठे।

यह मधुर आह्वान था, उस कलामयी किन्नरी के लिए।

वह उठी। मंथर गति से पग-पग पर अपनी कलापूर्ण प्रभा बिखेरती हुई वह कुंकुम के थाल के पास आ खड़ी हुई।

उसने कपूर-पात्र उठाकर अग्नि-शलाका से उसे प्रज्जवलित किया और तब महामाया की आरती उतारने लगी। मंदिर के घंटे पुनः तीव्र वेग से गुंजायमान हो उठे। आरती होती रही, चक्रवाल गाता रहा—

'काट अंध उर के बंधन हर, बहा जननि ज्योतिर्मय निर्झर'

कलुषा भेद तम हर, प्रकाश भर, जगमग जग कर दे।

वर दे—।'

आरती समाप्त हुई। उस मंगलमयी आरती का स्वागत करने हेतु किन्नरी आरती का थाल ले, सबके समक्ष होती हुई आगे बढ़ने लगी।

सभी श्रद्धालु भक्ति एवं श्रद्धा से दोनों हाथ आरती के थाल पर घुमाकर मस्तक से लगाते रहे।

द्रविड़राज ने आरती का स्वागत किया। उनके पार्श्व में ही बैठे थे युवराज। किन्नरी आरती का थाल लेकर युवराज के समक्ष आई।

वह न जाने क्यों सहम सी गई, लज्जित सी हो उठी। उसका हाथ एक क्षण के लिए प्रकम्पित हो उठा। युवराज ने भी आरती का स्वागत किया।

तत्पश्चात् किन्नरी के प्रकम्पित हाथों ने थाली में से थोड़ा-सा कुंकुम उठाकर युवराज के शुभ ललाट पर लगा दिया।

आरती की क्रिया समाप्त हो चुकने पर चक्रवाल ने पुनः वीणा उठाई।

उसकी तर्जनी ने वीणा के झिलमिलाते तारों का स्पर्श किया। प्रकृति को गुंजरित कर देने वाली सुमधुर झंकार निकल पड़ी उस मोहिनी वीणा से। साथ ही किन्नरी के नूपुर ध्वनि कर उठे—छूम छननन!

उसी समय बाल सूर्य की पहली किरण मंदिर के प्रांगण में से होती हुई युवराज के सुंदर मुख पर नृत्य कर उठी।

चक्रवाल ने गाया—

'अलस भाव त्याग सजनी, प्राथ किरण आई।'

किन्नरी ने अपने कलापूर्ण कटिप्रदेश को मरोड़कर एवं अपने सुकोमल शरीर को कम्पित करके 'अलस भाव त्याग सजनी' का भाव दर्शाया, तत्पश्चात् युवराज के मुख पर नृत्य करती हुई उस स्वर्णिम किरण की ओर संकेत करके 'प्रथम किरण आई' की व्यंजना की।

पुनः उसके नूपुर बज उठे छूम छनन!

चक्रवाल की तर्जनी, वीणा के तारों पर नृत्य करती रही एवं उसी के ताल के साथ-साथ किन्नरी की नर्तन-कला भी प्रवाहित होती रही।

चक्रवाल गाता रहा—

‘सुषमा की निधि अपार, क्यों न उठे पलक भार।

तन्द्रावश यों निहार सहसा मुस्कराई। अलस भाव...

किन्नरी ने यावत् जगत की ओर हाथ उठाकर ‘सुषमा की निधि अपार’ का संकेत किया, पुनः भूमि पर बैठ दोनों नेत्र बंद कर ‘क्यों न उठे पलक भार’ प्रदर्शित किया, तत्पश्चात् अपने दोनों मादक नयन अर्द्धोन्मिलित कर तन्द्रावश यों निहार का भाव बताया एवं अधरों पर एक मधुर मुस्कान लाकर ‘सहसा मुस्काई’ की व्यंजना की।

सब अवाक् थे—उस कलामयी सुंदरी की अप्रतिभ कला का अवलोकन कर। मरणोन्मुख को जीवित कर देने वाली थी उस किन्नरी की नर्तनकला।

युवराज के हृदय-प्रदेश में उस किन्नरी का अपूर्व प्रदर्शन देखकर एक अवर्णनीय स्पन्दन-सा होने लगा। उनका हृदय कला का पुजारी था और किन्नरी निहारिका थी कला की साक्षात् प्रतिमा।

मधुर झंकार के साथ चक्रवाल ने वीणाभूमि पर रख दी। पूजनोत्सव समाप्त हुआ। सब चले गये।

किन्नरी अपने प्रकोष्ठ में आई। युवराज और चक्रवाल धीरे-धीरे संभाषण करते हुए अपने प्रकोष्ठ की ओर जाने लगे।

‘चक्रवाल!’

‘आज्ञा श्रीयुवराज?’

‘आज तो किन्नरी की कला अपूर्व थी।’

‘उसकी कला अद्वितीय है, श्रीयुवराज! और यह उसके लिए परम गौरव की बात है कि श्रीयुवराज के हृदय में उसकी कला के प्रति इतना आकर्षण है...।’

‘तुम समझते हो आज से...? परन्तु मैं बहुत दिनों पूर्व से उसकी कला का आदर करता आ रहा हूं। भला स्वर्गिक कला का कौन आदर नहीं करेगा?’

'श्रीयुवराज की बात असत्य नहीं, परन्तु श्रीयुवराज मेरी धृष्टता क्षमा करेंगे—किन्नरी के हृदय में भी आपके प्रति अपूर्व श्रद्धा बहुत समय पूर्व ही विराजमान है। यह उसका परम दुर्भाग्य है कि श्रीयुवराज ने आज तक उससे तनिक भी संभाषण करने का कष्ट न उठाया। वह इसके लिए अत्यंत लालायित रहती हैं, यदि आप इतनी कृपा करें श्रीयुवराज तो...।

'यह मैं भी चाहता हूं। आज मुझे अवकाश है। चलो, उसके प्रकोष्ठ में चलकर कुछ देर तक उससे वार्तालाप कर लेने से चित्त को बहुत शांति मिलेगी।'

चक्रवाल प्रसन्नता से खिल उठा।

आज जम्बूद्वीप के भावी अधीश्वर एक किन्नरी से वार्तालाप करेंगे—यह कितने आश्चर्य की बात थी, परन्तु किन्नरी एवं चक्रवाल के लिए कितनी प्रसन्नता की। युवराज और चक्रवाल किन्नरी के प्रकोष्ठ के पासस आये।

प्रकोष्ठ के द्वार बंद थे। कदाचित् भीतर किन्नरी वस्त्र परिवर्तन कर रही थी।

चक्रवाल ने द्वार खटखटाया, साथ ही अंतर्प्रदेश से किन्नरी का स्वर सुनाई पड़ा—'कौन है?'

नित्य की भांति यद्यपि निहारिका ने अनुमान लगा लिया था कि चक्रवाल होगा, मगर क्या उसे स्वप्न में भी अनुमान हो सकता था कि युवराज नारिकेल उसके प्रकोष्ठ में पदार्पण करेंगे।

'मैं हूं...।' चक्रवाल ने नित्य की भांति कह दिया।

'कौन हो तुम...? जाओ इस समय!'

'बहुत आवश्यक कार्य है। शीघ्र द्वार खोलो।' चक्रवाल ने कहा।

किन्नरी वस्त्र परिवर्तन कर चुकी थी। उसने आगे बढ़कर धीरे से द्वार खोल दिया। एकाएक उसका सारा शरीर तीव्र वेग से प्रकम्पित हो उठा। युवराज के समक्ष उसने कैसी धृष्टातापूर्ण बात कह दी।

किन्नरी ने तुरंत ही अपनी अव्यवस्थित भंगिमा ठीक कर ली। उसने झुककर युवराज का सम्मान किया।

चक्रवाल बोला—'युवराज तुम्हारे प्रकोष्ठ में पधारे हैं...।'

'अहो भाग्य?' निहारिका ने मधुर मुस्कान के साथ वीणा-विनिन्दित मधुर स्वर जैसी मिठास में कहा।

युवराज एवं चक्रवाल प्रकोष्ठ के भीतर आये। चक्रवाल ने युवराज के लिए एक स्वर्णासन रख दिया। युवराज बैठ गये।

चक्रवाल एवं किन्नरी उनके समक्ष भूमि पर बैठे। कुछ देर तक शांति रही।

'तुम्हारी कला अपूर्व है किन्नरी।' युवराज ने शांति भंग की।

'...........।' किन्नरी ने कुछ कहना चाहा, परन्तु भावावेश में उसके मुख से शब्द ही न निकले, केवल उसके नेत्र एक क्षण के लिए युवराज के मुख पर जा ठहरे।

'जब तुम नृत्य करती हो तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है—मानो जगत की समस्त रुपराशि तुम्हारे अवयव द्वारा संचालित हो रही है, मानो संसार की सारी सुषमा तुमहारे नर्तन में प्रवेश कर अपनी प्रतिभा प्रदर्शित कर रही है, मानो तुम्हारे अपूर्व अंग-संचालन के साथ-साथ कितने ही तृषित हृदय संचालित हो रहे हों...।'

युवराज के मुख से अपनी स्पष्ट प्रशंसा सुन, किन्नरी निहारिका का रोम-रोम पुलकित हो उठा।

'यह श्रीयुवराज की असीम अनुकम्पा है, जो मुझे इतनी महानता दे रहे हैं...।' किन्नरी निहारिका केवल इतना कहकर मौन रह गई।

'यदि श्रीयुवराज मुझे कुछ देर के लिए बहार जाने की आज्ञा दे सकें तो आभारी हूंगा...।' चक्रवाल ने कहा।

'क्यों....?' पूछा युवराज ने।

‘एक आवश्यक कार्य करना मैं भूल गया हूं। मैं अभी आ जाऊंगा।’

‘जाओ, परन्तु शीघ्र आना...!’

चक्रवाल युवराज को सम्मान प्रदर्शन कर बाहर चला गया। प्रकोष्ठ में केवल युवराज और किन्नरी रह गये। कुछ देर तक घोर नीरवता उस सुसज्जित प्रकोष्ठ में विराजमान रही।

‘किन्नरी!’ अकस्मात युवराज ने पुकारा।

‘..........।’ उसने अपलक नेत्रों से युवराज के मुख की ओर देखा।

‘मेरे आने से तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं हुआ?’

‘कष्ट...।’ मधुर हास्य कर उठी सौंदर्य की वह अपूर्व प्रतिमा—‘भला देव के आने से देवदासी को कभी कष्ट हो सकता है? मेरे तो भाग्य जाग उठे, जो आप यहां पधारे...क्या श्रीयुवराज से मैं कुछ पूछने की धृष्टता कर सकती हूं?’

‘पूछो,क्या पूछना चाहती हो?’

‘श्रीयुवराज को मेरे नर्तन में कौन-सी ऐसी उत्कृष्टता दृष्टिगोचर हुई...?’

‘उत्कृष्टता नहीं, आकर्षण कहो। जगत का कौन-सा ऐसा आकर्षण है, जो तुम्हारी कला में विद्यमान न हो...।’

‘एक बात पूछूं?’ युवराज ने कहा।

कुछ काल तक पुनः निःस्तब्धता रही।

‘पूछिए न।’ सहज मुस्कराहट के साथ वह बोली।

‘उस दिन मेरे मस्तक पर कुंकुम लगाते समय, मेरी नासिका पर...।’

‘मैं उसके लिए क्षमा चाहती हूं, श्रीयुवराज!’ निहारिका लज्जा से गड़-सी गई।

‘कल राजोद्यान में, रात्रि के प्रथम पहर में मुझसे भेंट कर सकती हो?’

‘भला देव की आज्ञा देवदासी कभी अस्वीकार कर सकती है?’

‘अब मैं जाऊंगा...।’ कहकर युवराज ने भावावेश में किन्नरी के प्रकम्पित कर पकड़ लिये।

‘मुझे अधिक विलम्ब हो गया, श्रीयुवराज! क्षमा करें...चक्रवाल आ पहुंचा—‘वह देखिये, जाम्बुक चला आ रहा है। कदाचित् कोई आवश्यक कार्य है।’

युवराज ने सामने से देखा तो वास्तव में जाम्बुक चला आ रहा था।

युवराज बाहर आये। किन्नरी ने उन्हें सम्मानपूर्वक अभिवादन किया।

पांच

पुष्पपुर नगरी से कोई बीस योजन दूर, विकट वनस्थली के क्रोड़ में अवस्थित था एक विशाल ग्राम।

ग्राम के चारों ओर भयानकता एवं उदासीनता नर्तन कर रही थी। दीनता का अक्षय साम्राज्य था। उस ग्राम में अपना जीवनयापन करते थे दीनहीन एवं दुखी किरातगण।

छोटे-छोटे झोंपड़ों में रहते हुए वे ग्रीष्म की कड़कड़ाती धूप एवं अंग स्थिर कर देने वाली शीत ठण्डक का सामना करते थे।

उनके पास जो कुछ था, उसी में वे संतुष्ट थे। उनके बालक उल्लसित होकर इधर-उधर स्वच्छन्द विचरण किया करते थे।

संध्या का आगमन होते ही सब किरातगण एकत्रित होकर नाना प्रकार के आमोद-प्रमोद में तल्लीन हो जाते थे। सबमें एक्य भाव था। सभी अपने नायक की आज्ञा पर अपने प्राणों को उत्सर्ग करने की लिए सदैव, अहर्निश प्रस्तुत रहते थे।

नायक की आज्ञा की अवहेलना करने का कोई भी दुस्साहस नहीं कर सकता था।

किरात कुमार पर्णिक भी इसी ग्राम के दुकूल पर, अपनी माता के साथ एक छोटे-से झोंपड़े में रहता था।

पर्णिक अपने उस आमोदमय छोटे-से संसार में पूर्णतया सुखी था, परन्तु उसकी माता के मुख पर कभी किसी ने हास्य की रेखा नहीं देखी थी। न जाने कौन गुह्य वेदना उसके अंग-प्रत्यंग को शिथिल बनाये रहती थी।

वह अधिकतर अपनी झोंपड़ी के द्वार-देश पर, नेत्रों में अश्रु-कण छिपाये बैठी रहा करती थी।

अन्य किरात स्त्रियों के पास बैठकर मूर्खता की कुछ बातें कर लेना उसे स्वीकार न था। उसे सदैव एकांत ही प्रिय था।

पर्णिक आज प्रातःकाल से ही किरात युवकों के साथ खेलने में तल्लीन था। पर्णिक की अवस्था लगभग बीस वर्ष की थी। उसके साथी भी समवयस्क ही थे। सब पर्णिक की झोंपड़ी के पास ही खेल रहे थे।

पर्णिक की माता भी द्वार पर बैठी हुई उन युवकों का कल्लोल देख रही थी।

'आओ। आज हम लोग 'सम्राट का न्याय' नामक नाटक का अभिनय करें...।' पर्णिक ने कहा।

'कैसा है यह नाटक...?' एक ने पूछा।

पर्णिक उन्हें नाटक की सब बातें बताने लगा।

अंत में ऊंचे शिलाखंड पर आसीन होता हुआ वह बोला—'लो, अब मैं सम्राट बन गया।'

उसका नाटक प्रारंभ हो गया था।

'साम्राज्ञी को उपस्थित करो...।' वह गरजकर बोला—'सम्राट का न्याय न्याय है। ध्रुव्र-सा अटल! साम्राज्ञी ने स्वयं सम्राट से असत्य भाषण कर महान अपराध किया है, उसका दण्ड उन्हें भोगना ही पड़ेगा। सम्राट का न्याय साम्राज्ञी एवं प्रजा सबके लिए समान है...।'

'क्षमा! श्रीसम्राट...।' मंत्री का अभिनय करने वाले लड़के ने कहा —'साम्राज्ञी गर्भवती हैं...।'

'चुप रहो...!' कल्पित सम्राट गरजे—'मेरी क्रोधाग्नि में भस्म न हो। शीघ्र उपस्थित करो बन्दिनी साम्राज्ञी को...।'

साम्राज्ञी उपस्थित हो गई।

एक बालक ने अपने वस्त्र का एक भाग अपने सिर पर डालकर थोड़ा घूंघट निकाल लिया था—वही साम्राज्ञी का अभिनय कर रहा था।

पर्णिक की माता आश्चर्य-विस्फारित नेत्रों से अपने पुत्र का वह अद्भुत अभिनय देख रही थी।

'साम्राज्ञी!' सम्राट ने गरजकर पुकारा—'तुमने मुझसे असत्य भाषण कर महान अपराध किया है। तुम्हें अपने अपराध का दण्ड स्वीकार करना हेगा।'

'दासी को राजाज्ञा कभी अस्वीकार न होगी।' साम्राज्ञी ने कहा।

सम्राट ठुड्डी पर हाथ रखकर न जाने किस विचार में निमग्न हो गये, परंतु कुछ क्षण पश्चात् एकाएक वे उठ खड़े हुये।

मंत्री भयभीत स्वर में चिल्ला उठा—'दया...! क्षमा...।'

सम्राट ने मंत्री की ओर एक बार क्रुद्ध नेत्रों से देखा, पुनः तीव्र स्वर में बोले—'साम्राज्ञी तुम्हें आजन्म निर्वासन की दण्डाज्ञा सुनाई जाती है।'

सम्राट का गर्जन चारों ओर गूंज उठा।

द्वार पर बैठी हुई पर्णिक की माता न जाने क्यों भय से सिहर उठी।

सम्राट की मुखाकृति एकाएक वेदनाछन्न हो उठी।

उसके नेत्रों के कोरों पर अश्रुकण छलछला आये।

'साम्राज्ञी! तुम आजन्म निर्वासन दण्ड का भोग करो और तुम्हारे प्रेम का अनन्य पुजारी मैं यहां राज-प्रकोष्ठ में उपस्थित रहकर सुख-शैया पर विश्राम करूं—? नहीं यह नहीं हो सकता।' सम्राट की वाणी सिक्त थी—'प्रजाजनो!' सम्राट ने सामने की ओर देखा—'मैंने सम्राट बनकर न्याय किया, अब प्रेम का अनन्य पुजारी मैं साम्राज्ञी का साथ दूंगा। साम्राज्ञी के साथ वनस्थली में रहकर अपने न्याय का प्रतिपालन करूंगा। व्यर्थ है, रोकने की चेष्टा व्यर्थ है, महामंत्री...। मैं जाऊंगा ही।'

सम्राट राजसिंहासन से नीचे उतर गये और आगे बढ़कर उन्होंने साम्राज्ञी का हाथ पकड़ लिया—'चलो साम्राज्ञी! सुखों के उपभोग में तुम्हारा साथ दिया है मैंने, तो निर्वासन में विलग कैसे रह सकता हूं?'

सम्राट साम्राज्ञी को लेकर आगे की ओर बढ़ चले। सबकी आंखें सिक्त हो आयीं।

कोई उच्च स्वर में गा उठा, 'जाओ, जाओ ऐ मेरे सजन। रुक न सको तो जाओ...।'

'पर्णिक...।' पर्णिक की माता का उद्दीप्त स्वर सुनाई पड़ा।

सम्राट का अभिनय करते हुए पर्णिक की सारी उत्फुल्लता क्षणमात्र में विलीन हो गई।

वह उतावली के साथ दौड़ आया अपनी माता के पास—'क्या है माता जी?'

उसने देखा, उसकी माता की मुखाकृति गंभीर एवं वेदनापूर्ण है।

'इस नाटक की रचना तूने कैसे की? किसने प्रेरणा दी?'

'किसी ने नहीं माता जी। मैंने तो इसे आज स्वप्न में देखा था।' पर्णिक ने कहा—'मैंने देखा था कि एक रानी ने एक राजा से असत्य भाषण का महान् अपराध किया। न्यायकर्ता राजा, रानी को राजदंड देने को प्रस्तुत हुआ—परन्तु उसने क्या दण्ड दिया, वह मुझे स्मरण नहीं रहा...आज प्रातःकाल ही से मैं यह सोचने का प्रयत्न करता आ रहा हूं कि स्वप्न में उस राजा ने अपनी रानी को कौन-सा दण्ड दिया होगा—मगर वह बाल स्मृति पटल पर लाख चेष्टा करने पर भी नहीं आई। विवश होकर मैंने अपनी ही बुद्धि से दंड की व्यवस्था सोच निकाली। मेरे न्याय करने में कोई त्रुटि थी माता जी?'

पर्णिक की माता के नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित हो चले।

‘मैं बहुत चाहता हूं, माताजी।’ पर्णिक पुनः बोला, ‘कि मैं कहीं का सम्राट हो जाऊं, परन्तु कैसे होते हैं सम्राट माताजी? हम ही जैसे तो...? अब तो नित्यप्रति ही ऐसे नाटकों की रचना करेंगे।’

‘................. वत्स! इस प्रकार का नाटक फिर कभी अभिनीत न करना, समझे।’ पर्णिक की माता ने कहा—‘जाओ, तुम्हारे साथी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।’

सरल पर्णिक ने माता की आंतरिक व्यथा पर मनन करने का तनिक भी प्रयत्न नहीं किया और शीघ्रतापूर्वक अपने साथियों के साथ चला गया।

‘भाई! अब हम यह नाटक कभी नहीं खेलेंगे। माताजी को दुख होता है।’ उसने अपने साथियों से कहा। सब क्रीड़ा करते हुए आगे बढ़ चले।

उधर से नायक का पुत्र आ रहा था।

‘तुम कहां थे....?’ एक लड़के ने उससे कहा—‘आज हम लोगों ने एक अद्भुत नाटक अभिनीत किया था।’

‘अच्छा...!’ नायक पुत्र ने विचित्र भंगिमा से नेत्र संचालन किया।

‘तुम होते तो देखते कि पर्णिक सम्राट के वेश में स्वतः सम्राट-सा लग रहा था...।’

‘कौन बना था सम्राट...? यह पर्णिकं! नायक पुत्र घृणा से मुख विकृत कर बोला—‘जिसके जन्म, वंश का पता नहीं, जिसके पिता का पता नहीं, वह सम्राट बने। जिसकी माता...।’

‘सावधान...!’ पर्णिक ने दौड़कर नायक पुत्र के मुख पर हाथ रख दिया —‘माताजी के लिए आगे एक भी शब्द निकाला तो जीभ पकड़कर मरोड़ दूंगा...।’

‘तुम अनाथ मेरी जीभ पकड़कर ऐंठ दोगे...? जाओ, हट जाओ सामने से, नहीं तो...।’

उसी क्षण क्रुद्ध पर्णिक ने अपने हाथ की लकड़ी से नायक के पुत्र की पीठ पर कई प्रहार कर दिये।

नायक पुत्र क्रोध से बड़बड़ाता हुआ अपने पिता के पास गुहार लेकर चला गया। कुछ ही देर बाद वह अपने पिता के साथ लौटा।

'क्यों पर्णिक! इतना साहस बढ़ गया है तुम्हारा?' नायक ने क्रोधमिश्रित स्वर में कहा।

'देखो न पितृव्य! इसने मेरी माता के सम्मान पर कीचड़ उछाला था...।' पर्णिक ने अभियोग उपस्थित किया।

'बड़ी आई है तेरी माता...?' नायक गरज पड़ा—'एक दिन अनाथ होकर, इधर-उधर वनस्थली में भटकती हुई दूर-दूर की ठोकरें खाती हुई, तुझे गर्भ में धारण किये यहां आई थी वह। हम लोगों ने उसे भोजन दिया था—आश्रय दिया—वही आज बड़ी सम्मान वाली बन गई?'

'पितृव्य...!'

'चुप रहो। आज से यदि किसी बालक के मुंह लगा तो किरात-समुदाय से निकाल बाहर करूंगा। इतना बड़ा हो गया, उच्छृंखलता न गई। जिसके पिता का ठिकाना नहीं, वह नायक के पुत्र की बराबरी करे...? जा, भाग जा...।'

उसके उज्ज्वल मुखमंडल पर प्रखरतर कालिमा आछन्न हो गई। अपमान से जर्जर हृदय लिए पर्णिक अपनी माता के पास लौट चला।

उसकी माता द्वार देश पर चिन्ता-निमग्न बैठी हुई थी।

अपने पुत्र को कालिमामंडित मुख लिये आया देखकर वह खड़ी हुई और व्यग्रता से पूछ बैठी—'क्या हुआ वत्स...?'

'मेरे पिता कौन हैं माताजी...?' पर्णिक ने आते ही पूछा।

उसके मुख पर युवावस्था की गंभीरता नर्तन कर रही थी।

'आज से पहले कभी नहीं पूछा था, आज क्या बात हो गई है जो...?'

'सब तुम्हारा अपमान करते हैं माताजी...! कहते हैं कि...!'

'कहने दो वत्स...।' उसकी माता ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर कहा—'हमारा जीवन ही अपमान, अनादर एवं अवहेलना सहन करने के लिए हैं। इस संसार में अपना है ही कौन? जाने दो पर्णिक, जो कुछ भी जिसने कहा हो, उस पर ध्यान न दो। आज मैं आश्रयहीन होकर तुम्हारा नन्हा-सा शरीर अपने गर्भ में धारण किये यहां आई थी, उस समय न इन किरातों ने मुझ पर असीम दया प्रदर्शित की थी। यह उन्हीं की कृपा का प्रतिफल है वत्स, कि तुम आज इतने बड़े होकर मुझ दुखियारी का संसार उज्ज्वल कर रहे हो उनकी बातों पर ध्यान देना कृतघ्नता होगी...।'

'तुम अभी तक मुझे अशक्त ही समझती हो, माताजी! तुम भूल गई हो कि तुम्हारे आशीर्वाद से अब तुम्हारा पुत्र तुम्हारे अपमान का प्रतिशोध लेने योग्य हो गया है...।'

'किससे प्रतिशोध लोगे?'

'जो भी तुम्हारा अपमान करेगा, जो भी तुम्हें अपशब्द कहेगा।'

'पर्णिक...।' पर्णिक का एक साथी दौड़ता हुआ आया—'तुम्हारे चले जाने पर नायक ने तुम्हें 'जारपुत्र' कहा था।'

'सुन रही हो माताजी! सुन रही हो तुम? अभी भी कहती हो कि तुम्हारा अपमान सुनकर मैं रक्त के घूंट पीकर सहन कर लूं, नहीं। यह नहीं होगा...मैं आज ही, अभी ही नायक से अपनी माता के अपमान का प्रतिशोध लूंगा...।' पर्णिक कृपाण लेने अपनी झोंपड़ी में दौड़ गया।

'वत्स...!'

'मुझे रोको मत, माताजी। मेरे रक्त में उत्पन्न हो गई दाहक-अग्नि को अंतरा में ही शमन न होने दो...मुझे आशीर्वाद दो माताजी! कह दो अपनी देवी वाणी से कि वत्स! विजय लाभ कर लौटो।'

'वत्स! अभी तुम बालक हो...वह किरात समुदाय का नायक है। उसकी प्रबलता तुम किस प्रकार सहन कर सकोगे?'

'विलम्ब हो रहा है...मुझे आज्ञा दीजिये माताजी!'

'जाओ वत्स...परन्तु...।'

पर्णिक कृपाण लेकर तीव्र गति से दौड़ चला।

हताश होकर पर्णिक की मां भूमि पर बैठ गयी। उसका मुख अश्रुप्लावित हो उठा।

'नायक...!' गरजकर बोला पर्णिक, उसके हाथ का कृपाण सूर्य के प्रकाश में चमक उठा—'तुमने अपशब्द कहकर मेरी माता का अपमान किया है। आज पर्णिक उसका प्रतिशोध लेने आया है।'

'लौट जा।' नायक क्रोध से चिल्ला उठा—'जाकर अपनी माता की गोद में मुंह छिपा ले, अज्ञानी बालक! नायक की क्रोधाग्नि में भस्म होने की चेष्टा न कर...।'

'घमंडी का सर सदा नत होता आया है नायक! आज तुम्हारा भी वही परिणाम होने वाला है। आज एक अनाथ का शौर्य देख लो, देख लो नायक कि अकारण किसी का अपमान करने से किस प्रकार दैवी प्रकोप टूट पड़ता है—किस प्रकार विद्युत का प्रबल आलोक भयानक अग्न बनकर गर्व को भस्मसात कर देता है।'

मेघ-गर्जन जैसी ललकार सुनकर किरात समुदाय के कितने ही व्यक्ति घटनास्थल पर जा पहुंचे।

पर्णिक की धृष्टतापूर्ण बात सुनकर कुछ किरात उसे पकड़ने के लिए आगे बढ़े, परन्तु नायक गरज उठा—'दूर रहो। आज इस दुष्ट के प्राण शरीर से अलग होने वाले हैं—आने दो इसे मेरे पास।'

'नायक! तुम...।' एक वृद्ध किरात बोला—'तुम एक अबोध बालक पर प्रहार करोगे? हत्या का अपराध न लगेगा तुम पर?'

'समझाओ उसे! समझा दो कि नायक से उलझना परिहास नहीं है।'

परन्तु पर्णिक ने किसी की न सुनी। उसने मन-ही-मन अपनी माता को प्रणाम किया, तत्पश्चात् कृपाण लेकर टूट पड़ा नायक पर।

जिस अबोध बालक को नायक ने साधारण बालक-मात्र समझा था—वह था शस्त्र निपुण एक अपूर्व वीर।

दो-चार प्रहार में ही नायक को ज्ञात हो गया कि पर्णिक से लोहा लेना खेल नहीं।

उपस्थित किरात समुदाय पर्णिक की वीरता देखकर विमुग्ध था। पर्णिक का कृपाण तीव्र वेग से नाच रहा था। नायक का कृपाण भी अद्भुत गति से परिचालित था,परन्तु पर्णिक की मां ने उसे जिस प्रकार से शस्त्र-संचालन का अभ्यास कराया था, वह अद्वितीय था, अनुपम था—अद्भुत था।

तीव्र शस्त्र संचालन से नायक का कृपाण एकाएक मध्य से विच्छिन्न हो गया।

पर्णिक ने भी अपना कृपाण फेंक दिया और दोनों विकट प्रतिद्वन्द्वी मल्लयुद्ध करने लगे।

पर्णिक का शौर्य अपूर्व था, उसका पौरुष अद्भुत था, उसकी वीरता अनुपम थी।

उसने कई बार नायक के पृष्ठ भाग को पृथ्वी का चुम्बन करा दिया। किरात समुदाय आश्चर्यान्वित होकर वीर पर्णिक की वीरता देख रहे थे। पर्णिक की मुष्टिका अबाध गति से नायक के मुख पर, छाती पर, अंग-प्रत्यंग पर पड़ रही थी।

नायक की शक्ति क्रमशः क्षीण होती जा रही थी। एकाएक वह अर्द्धचेतनाहीन होकर भूमि पर गिर पड़ा।

पर्णिक ने उसे उठाया—'कायर कहीं का। कहां गई तेरी वह वीरता? कहां गया तेरा वह घमंड? कहां गई 'जारपुत्र' कहने वाली तेरी वह निकृष्ट जिह्वा?'

नायक शिथिल हो रहा था—'मुझे क्षमा करो पर्णिक...!' उसने दीनतायुक्त वाणी में कहा।

'क्षमा करना मैंने नहीं सीखा। उठ! प्रहार करने की शक्ति हो तो प्रहार कर नहीं तो मेरी माता के अपमान करने वाले शब्दों को वापस ले नीच! अधम! पापी! कायर!!'

पर्णिक ने कई बार नायक के शरीर पर पदाघात किया। नायक पूर्णतया अशक्त हो चुका था।

'देख ले दुराचारी।' पर्णिक ने गर्जना की—'आज एक आश्रयहीन बालक का शौर्य देख ले...आज देख ले कि एक देवी का अपमान करने का कैसा कुपरिणाम होता है, आज देख ले कि प्रलय का आह्वान करना कितना भयंकर होता है। आज देख ले कि...।'

'उफ तेरी जिह्वा।' पर्णिक पुनः हुंकार उठा—'तेरी जिह्वा ने ही तो मेरी मां का अपमान किया था। तेरी जिह्वा ने ही तो नायकत्व के गर्व से मुझे 'जारपुत्र' कहा था। तेरी जिह्वा ने ही एक असहाय देवी का अपमान करके प्रलय का आह्वान किया था।'

पर्णिक ने दौड़कर अपना कृपाण उठा लिया और नायक के वक्ष पर जा बैठा—'आज तेरी जिह्वा का समूल नाश कर दूंगा।'

नायक कांप उठा, उस युवक की क्रोधपूर्ण मुखाकृति अवलोकन कर।

'समूल विनाश कर दूंगा—ताकि पुनः किसी अभागे को यह जिह्वा अपशब्द न कह सके—ताकि फिर किसी पूजनीय देवी का अपमान न कर सके।'

क्रोध से पागल पर्णिक ने अपने तीव्र कृपाण द्वारा नायक की जिह्वा काट ली।

उपस्थित किरात समुदाय ने अपनी आंखें बंद कर लीं। किसी को भी उस विचित्र दुस्साहसी युवक को रोकने का साहस न हुआ। कैसे हो सकता था साहस?

जिस नायक ने किरात समुदाय के सभी सदस्यों को अपनी निरंकुशता द्वारा वशीभूत कर रखा था—जब वही उस वीर युवक की क्रोधाग्नि में भस्मीभूत हो रहा था तो दूसरा कौन अपने प्राणों पर खेलकर पर्णिक के कार्य में बाधा पहुंचा सकता था।

क्रोधांध पर्णिक ने नायक की टांग पकड़ ली और उसे घसीटता हुआ अपने झोंपड़े की ओर चल पड़ा।

उपस्थित किरात-समुदाय ने बिना एक शब्द बोले उस वीर युवक का अनुसरण किया।

'लो माताजी! यही है वह दुराचारी नायक...।' पर्णिक ने नायक के शरीर को अपनी माता के चरणों पर धकेल दिया—'और यह है उच्छृंखल की जिह्वा'

पर्णिक ने नायक की कटी हुई रक्तरंजित जिह्वा अपनी माता के समक्ष भूमि पर फेंक दी। उसकी माता ने अपने दोनों नेत्र आवेग में बंद कर लिए।

'वत्स...!' वह अस्त-व्यस्त वाणी में बोली।

'यह है तुम्हारे प्रखरतर अपमान का प्रतिशोध...।' पर्णिक ने कहा।

उसकी माता के नेत्रों से प्रेमाश्रु उमड़ पड़े।

'माताजी! तुम्हारा पुत्र अब इस योग्य हो गया है कि तुम्हारी सेवा कर सके। तुम जिस वेदना से, जिस व्यथा से, अहर्निश विदग्ध होती रहती हो, उसे मुझे बताओ। मैं प्राण देकर भी तुम्हारी आकांक्षा पूर्ण करूंगा...बोलो माताजी, बोलो...।'

‘……’ उसकी माता मौन ही रही।

केवल उसने एक बार अपने पुत्र के देदीप्यमान मुखमण्डल पर गर्वपूर्ण दृष्टि निक्षेप की।

‘वत्स पर्णिक…।’ एक वृद्ध किरात बोला—‘आज से तुम किरात-समुदाय के नायक हुए। तुम शौर्यवान हो—बुद्धिमान हो, अब से तुम जो कुछ आज्ञा दोगे, वह किसी को भी अमान्य न होगी।’

‘नायक पर्णिक की जय…।’ किरात समुदाय नाद कर उठा।

उसी दिन से पर्णिक किरात समुदाय का नायक हो गया।

छह

सुन्दर पुष्पों का मधुर गंध वहन करता हुआ पवन, पुष्पपुर राजोद्यान में विचरण कर रहा था।

स्वच्छाकाश में आती हुई चारु चन्द्रिका, अर्द्धप्रस्फुटित कलिकाओं का सुकोमल मुख चुम्बन कर रही थी। मदमत्त पौधों की टहनियां सौन्दर्य भार से दबी हुई, पुष्पराशि का भार वहन करती हुई, मंथर गति से अपना मस्तक हिला रही थी, मानो प्रकृतिनटी के उस हृदयोल्लासपूर्ण सृजन पर अपनी स्वीकारोक्ति प्रदान कर रही हो।

चारों ओर श्वेत स्फुटित से आच्छादित राजोद्यान के अनुपम सरोवर ने अपने वक्षस्थल पर जगत की सारी सुषमा का एकत्रीकरण कर रखा था।

परमोज्ज्वल सलिल राशि के ऊपर आच्छादित अगणित कुमुदिनी के पुष्प एवं उनके विकसित श्वेतांगों पर मनमोहक एवं मुग्धकारी मुस्कान बिखेरती हुई चारु-चन्द्रिका का वह दृश्य दर्शनीय था।

मारीचिमाली के रजत-किरीट की रश्मि राजोद्यान के कोने-कोने में नृत्य कर रही थी। संध्या-समीर की मृदुल हिल्लोल से प्रकृति-नटी का मुख मुखरित हो उठा था।

उद्यान एक अपूर्व शोभामयी रंगभूमि में परिणत हो गया था।

वृक्षों का आलिंगन कर लतायें आनंद-विभोर हो रही थीं।

विहंग समूह नीड़ों से मधुर रागिनी अलाप रहा था।

पल्लव-पल्लव से विमल आलोक छटा देदीप्यमान हो रही थी।

कलिकायें मदमत्त हो रही थीं।

प्रकृति श्रृंगारमयी होकर मानो किसी की प्रतीक्षा कर रही थीं।

साथ ही युवराज की प्रतीक्षा कर रही थीं एक श्वेत स्फटिकशिला पर कलापूर्ण ढंग से बैठी हुई सौंदर्य की अनुपम प्रतिमा, किन्नरी निहारिका।

निहारिका की अतुल रुपराशि से राजोद्यान जैसे उन्मत्त-सा हो रहा था।

कैसा आकर्षक, कैसा प्रोज्वल, कैसा मनोरम एवं केसा शांतिदायक वातावरण था।

'अभी तक नहीं आये, युवराज…?' अधिक विलम्ब होते देखकर किन्नरी अन्यमनस्क हो उठी—'आयेंगे भी या नहीं—कौन जानता है? वे हैं युवराज…! एक अधम किन्नरी के लिए वे क्यों इतना कष्ट उठायेंगे…? यह तो उनका कथनमात्र था, केवल शिष्टाचार था कि राजोद्यान में मुझसे मिलना।'

प्रकृति निस्तब्ध थी।

केवल एकाकी बैठी हुई निहारिका संतप्त हृदय से युवराज की प्रतीक्षा कर रही थी। उसके जीवन में आज यह प्रथम अवसर था कि वह युवराज से एकांत में भेंट करने आई थी।

पत्ते खड़के और किन्नरी को विश्वास हो गया कि युवराज पधार रहे हैं। युवराज को संतप्त करने के अभिप्राय से वह एक दीर्घाकार वृक्ष की ओट में जा छिपी।

दूसरे ही क्षण युवराज आये, परन्तु युवराज की मुखाकृति म्लान पड़ गई, यह देखकर कि अत्यधिक विलम्ब हो जाने पर भी किन्नरी निहारिका नहीं आई है।

पार्श्व के वृक्ष की ओट से कुछ खड़खड़ाहट हुई।

युवराज ने कोई जन्तु होने का अनुमान किया। उन्होंने झुककर भूमि पर से एक कंकड़ उठाकर उसे वेग से वृक्ष की ओर फेंका।

तुरंत ही एक धीमी कराह की ध्वनि उस वृक्ष के पास से आई।

युवराज आश्चर्यचकित मुद्रा में कराह का लक्ष्य करते हुए वहां जा पहुंचे।

देखा—अपना बाम मणिबंध पकड़े हुए निहारिका अब भी कराह रही है।

'निहारिका तुम...?' युवराज उतावली से बोले। किन्नरी ने झुककर युवराज को सम्मान प्रदर्शन किया।

'चोट तो नहीं आई...?' पूछा युवराज ने।

'नहीं।' निहारिका ने कह दिया, परन्तु उसे हल्की-सी चोट अवश्य लग गई थी, जहां से क्षीण रक्तस्राव झलक उठा था।

'चोट अवश्य आई है तुम्हें! लाओ देखूं?' युवराज ने आगे बढ़कर किन्नरी का मणिबंध पकड़ना चाहा।

परन्तु उसी समय प्रकृति की नीरवता को बेंधता हुआ यह गीत प्रतिध्वनित हो उठा—'मत छूना रे, वह मोती जो अनबोल कहाये।' अपने प्रकोष्ठ में बैठा हुआ चक्रवाल वीणा के तारों पर यह गीत गा रहा था और स्वरलहरी यहां तक पहुंचकर, कर्ण-कुहरों में मधुवर्षा करने लगी थी।

युवराज ने गीत से चौंककर अपना हाथ खींच लिया। किन्नरी के मणिबंध से दो बूंद रक्त टपक कर भूमि पर आ रहा।

'यह क्या...?' रक्तस्राव।' उतावली के साथ युवराज ने किन्नरी का मणिबंध अपने हाथ में लेकर देखा—'ओह! यह तो क्षत हो गया है।'

युवराज किन्नरी को लेकर सरोवर के पास आये। किन्नरी के नहीं कहने पर भी उन्होंने उसका घाव निर्मल जल से धोया, फिर अपने मूल्यवान मुकुटबंध का थोड़ा-सा भाग फाड़कर पट्टी बांध दी।

किन्नरी एक मादक स्वप्न का आभास पाकर सिहर उठी।

'बैठो।' युवराज स्फटिक शिला पर बैठते हुए बोले।

किन्नरी भूमि पर बैठने लगी।

'वहां नहीं, यहां बैठो।' युवराज ने उसे अपने पास स्फटिक शिला पर बैठने का संकेत किया—'तुम कलामयी हो, तुम्हारा मैं आदर करता हूं।'

'ऐसा न कहो श्रीयुवराज! म्लान पुष्प को देवता के मस्तक पर चढ़ने का सौभाग्य कहां...?'

'तुम म्लान पुष्प नहीं, हृदयोद्यान की प्रस्फुटित कलिका हो, कलामयी ! तुम अनुपम हो, अगम हो।' युवराज ने किन्नरी को हठपूर्वक उस स्फटिक-शिला पर बैठा लिया—'तुम अद्भुत कलामयी हो, मैं तुम्हारा पुजारी हूं। तुम मेरी आराध्य देवी हो, मैं तुम्हारा उपासक हूं। इन कला पारखी नेत्रों में तुम्हारे प्रति अपूर्व श्रद्धा विराजमान है, सच्चे कला पारखी के मन में उच्चता एवं हीनता का भाव नही रह जाता, किन्नरी।'

'आप धन्य हैं युवराज...।'

'धन्य हूं...?' युवराज मंद मुस्कान के साथ बोले—'धन्य नहीं, कला का अनन्य भक्त हूं मैं। जिस प्रकार चक्रवाल की गायन-कला का आदर करता हूं, उसी प्रकार नर्तन-कला का भी। वास्तव में प्रकृति देवी की अद्भुत कला

की अनुपम प्रतिमा इस जगती-तल पर साकार रूप धारण करके आ गई है, तुम्हारे रूप में...।'

'...........।' किन्नरी के हृदय में मृदु स्पन्दन हो रहा था।

'किन्नरी!'

'देव!'

'तुम्हें कष्ट हुआ यहां आने में?'

'कष्ट किस बात का आदरणीय...?' हास्य कर उठी सौंदर्य की वह अनुपम राशि। उसकी उज्ज्वल दंत पंक्तियां विद्युत रेखा -सी चमक उठीं —'श्रीयुवराज ने मुझे किस हेतु यहां आने की आज्ञा दी थी।'

'इसलिए कि एकांत में तुम्हारी कला का विधिवत् आनंद ले सकूं।'

'तो क्या युवराज की यह अभिलाषा है कि मैं किसी नृत्य का प्रदर्शन करूं?'

'रहने दो। तुम्हें कष्ट है...तुम्हारा हृदय व्यथित हो रहा है...।'

'श्रीयुवराज का तात्पर्य...?' किन्नरी ने अर्द्धोन्मिलित नयनों द्वारा युवराज की ओर देखा।

'यही कि तुम्हारा मणिबंध क्षत है...पीड़ा होती होगी उसमें...।' बड़ी देर तक दोनों मौनावस्था में स्फटित शिला पर बैठे रहे।

नीलाकाश में धवल चन्द्र अपनी हृदयग्राही मुस्कान बिखेर रहा था, परंतु लज्जित हो रहा था, युवराज के पार्श्व में बैठे हुए उस अनुपम भूचन्द्र का अवलोकन कर।

'अब जाओ निहारिका! देर होगी तुम्हें।' युवराज ने कहा और उठ खड़े हुए।

निहारिका भी खड़ी हो गई।

‘यदि सकुशल रहा तो फिर कल प्रातःकाल मंदिर में मिलन होगा।’

‘महामाया की माया से युवराज चिरकाल तक सकुशल रहेंगे।’ किन्नरी बोली और उसने झुककर युवराज का अभिवादन किया।

□ □

□ □

उस समय जबकि रात्रि की भयानक निस्तब्धता यावत् जगत पर आच्छादित थी, किन्नरी निहारिका अपने प्रकोष्ठ में बैठी हुई न जाने किस प्रगाढ़ चिंता में निमगन थी।

उसके मणिबंध पर अभी तक युवराज के मुकुटबंद का टुकड़ा बंधा हुआ था, उसने उसे सावधानी से खोला और मस्तक से लगाकर यत्नपूर्वक एक स्थान पर रख दिया।

पुनः वह चिंता में निमग्न हो गई। कदाचित् वह युवराज के विषय में ही चिंतन कर रही थी।

तभी तो कभी-कभी वह उन्मत्त दृष्टि उठाकर युवराज के मुकुटबंध के उस धवल टुकड़े की ओर देख लेती थी।

मानवीय हृदय में उथल-पुथल होता रहता है, परन्तु कभी-कभी वह इतनी पराकाष्ठा तक पहुंच जाता है कि सहनशीलता उसका वहन करने में पूर्णतया असमर्थ हो जाती है।

पार्श्व के प्रकोष्ठ में खिड़की के पास बैठा हुआ चक्रवाल धवल चन्द्रिका का कल्लोल देख रहा था, साथ ही गीत की स्वरलहिरी भी मधुर गति से प्रवाहित हो रही थी।

वह गुनगुना रहा था—

‘जो केलि कुंज में तुमको, कंकड़ी उन्होंने मारी।

क्यों कसक रही वह अब भी, तेरे उर में सुकुमारी।।’

□ □

□ □

आज फिर वही दृश्य।

तारिका जड़ित आकाश के वक्षस्थल पर अपनी प्रभा बिखेरता हुआ चन्द्र, राजोद्यान के सरोवर में विकसित होती हुई कुमुदिनी और स्वच्द स्फटिक-शिला पर बैठे हुए युवराज नारिकेल, किन्नरी निहारिका एवं चक्रवाल—

रात्रि का प्रगाढ़ अंधकार चारु-चन्द्रिका का आलिंगन कर यथावत्, जगत पर एक असहनीय विकलता प्रसारित कर रहा था।

युवराज एवं किन्नरी अविचल बैठे थे—चक्रवाल भी शांत था।

पक्षियों का गुंजरित कलरव रात्रि की निस्तब्धता में विलीन हो गया।

'आप व्यग्र क्यों हैं श्रीयुवराज...?' पूछा चक्रवाल ने।

'व्यग्र तो नहीं हूं।' युवराज ने कहा—'मैं उत्सुक दृष्टि से उस दीप्त चंद्र को देख रहा था एवं सोच रहा था कि कितना मुग्धकारी एवं कलापूर्ण नृत्य है उसका, स्वच्छाकाश के वक्ष पर।'

'श्रीयुवराज का हृदय कितना उदार एवं कितना निर्मल है...?' किन्नरी ने मधुर स्वर में कहा।

'क्या श्रीयुवराज द्वारा भूचन्द्र के कलापूर्ण नर्तन अवलोकन नहीं करेंगे?' चक्रवाल ने किन्नरी की ओर संकेत कर कहा।

'क्यों नहीं...? अवश्य अवलोकन करूंगा। कलामयी सुन्दरी! तुम अपना अपूर्व नर्तन आरंभ करो।'

कटिप्रदेश पर किंचित बल देकर सुंदरी निहारिका उठ खड़ी हुई। उसके नूपुर बज उठे—छम-छम!

चक्रवाल ने अपनी वीणा हाथ में ली। उसकी अभ्यस्त अंगुलियां अविराम गति से वीणा के तारों पर नृत्य करने लगी।।

मुग्धकारी स्वर वीणा के तारों से प्रवाहित होकर नूपुर ध्वनि का आलिंगन करने लगा। दोनों स्वरों के सम्मिश्रण से प्रकृति निस्तब्ध, निश्चल हो उठी।

वे दोनों श्रेष्ठतम कलाकार अपनी-अपनी कला में पूर्णतया तन्मय हो गए। चक्रवाल अपनी वीणा पर एक गीत बजाने लगा। किन्नरी के नूपुर उस गीत का अनुसरण कर अबाध, किन्तु मंथर गति से गुंजरित होने लगे।

किन्नरी का बल खाता हुआ ललितांग शरीर युवराज के सन्निकट कभी इतस्ततः नर्तन करता रहा।

युवराज मंत्र-मुग्ध दृष्टि से उस अपूर्व नृत्य का अवलोकन करते रहे। उस युवती किन्नरी की प्रतिभा अपूर्व थी, अनुपमेय थी। सुंदरी निहारिका का वह कलापूर्ण नर्तन मानो राजोद्यान की विलासमयी भूमि पर नहीं, वरन युवराज के हृदय प्रदेश पर हो रहा हो।

तन्मयता से नृत्य अवलोकन कर रहे थे वे।

वीणा की मधुर झंकार के साथ चक्रवाल की स्वर लहरी अलाप उठी—

जो केलि कुंज में तुमको कंकड़ी उन्होंने मारी।

क्या कसक रही वह अब भी तेरे उर में सुकुमारी।।

निहारिका कांप उठी—युवराज विचलित हो उठे।

चक्रवाल का वह गायन सुनकर किन्नरी को लगा, जैसे वह उस गायन का भाव अपने नृत्य द्वारा व्यक्त करने में सर्वथा असमर्थ है।

युवराज चिल्ला उठे—'चक्रवाल !'

परन्तु चक्रवाल तन्मय था। उसकी स्वर-रागिनी में तनिक भी शिथिलता न आई।

वह गाता ही रहा।

निहारिका ने एक क्षण में ही अपनी भंगिमा ठीक कर ली। उसके अंग-प्रत्यंग पूर्ववत गायन का भाव व्यक्त करने लगे।

उसने पहले उद्यान के सघन निकुंज की ओर अपनी तर्जनी द्वारा संकेत किया, फिर कलापूर्ण गति से झुककर भूम पर से एक कंकड़ी उठा ली ओर उसे सामने की ओर फेंका-पश्चात तीव्र गति से सिसकारी भरती हुई वह भूमि पर बैठ गई, मानो वह कंकड़ी उसी को आकर लगी हो।

इस प्रकार उसने जो केलिकुंज में तुमको, कंकड़ी उन्होंने मारी—का भाव प्रदर्शित किया।

गायन एवं नर्तन रुक गया—तीव्र गति से जाम्बुक को दौड़ा आते हुए देखकर।

उसे घबराई हुई भंगिमा से आता हुआ देखकर युवराज को कुछ शंका हुई। उन्होंने पूछा—'क्या है चम्बुक?'

जाम्बुक ने उंगली से एक ओर संकेत किया।

उसी समय सब चौंक पड़े यह देखकर कि राजोद्यान के मुख्य द्वार से महापुजारी की उग्र मूर्ति इधर ही अग्रसर होती आ रही है।

महापुजारी आकर उन लोगों के समक्ष खड़े हो गये।

युवराज ने उनके चरण स्पर्श किये।

महापुजारी ने तीक्ष्ण दृष्टि से युवराज के नेत्रों में देखा और गंभीर स्वर में शुभाशीर्वाद दिया। एक क्षण सन्नाटा रहा।

'तुम लोग जाओ...।' महापुजारी ने किन्नरी, चक्रवाल तथा जाम्बुक को आज्ञा दीं तीनों आशंकित हृदय से चले गये।

'बैठिये श्रीयुवराज।' महापुजारी उस स्फटिक-शिला पर बैठत हुए बोले।

युवराज का हृदय धड़क उठा।

'श्रीयुवराज...।' महापुजारी की वाणी में तीव्रता थी।

'आज्ञा देव...।'

'क्या हो रहा था यहां...?'

'कुछ भी तो नहीं महापुजारी जी।' युवराज ने संयत वाणी में उत्तर दिया।

'कुछ नहीं...? आप कहते हैं कि कुछ नहीं हो रहा था?' महापुजारी का स्वर उत्तरोत्तर तीव्र होता जा रहा था—'चन्द्रछटा परिपूरित रात्रि में कुमुदिनी का प्रस्फुटित श्वेतांग देखकर, प्रकृति देवी का यह अद्भुत सृजन अवलोकन कर, मन स्वभवतः चलायमान हो जाता है...मैं पूछता हूं आपसे श्रीयुवराज कि यहां किस प्रलय की सृष्टि की जा रही थी...?'

'महापुजारी जी !'

'मैं स्पष्ट उत्तर चाहता हूं...नहीं तो मुझे श्रीसम्राट के समक्ष यह बात प्रकट करनी पड़ेगी।'

'पिताजी के समक्ष...! क्यों...? क्या आप यह समझते हैं कि महापुजारी जी कि आप मेरे कोई नहीं हैं? क्या आप मेरे पिता तुल्य नहीं? क्या आपको मुझे दंड देने का अधिकार नहीं? क्या आपकी आज्ञा की अवहेलना करने की शक्ति मुझमें हैं...? महापुजारी जी! आपका प्रोज्जवल हृदय आज ऐसे मलीन विचारों को कैसे स्थान दे रहा है...? स्पष्ट कहिये, यदि मुझसे कोई अपराध हुआ हो तो मुझे दंडाज्ञा दीजिये, मैं दंडाज्ञा स्वीकार करने को प्रस्तुत हूं।'

'वत्स...!' एकाएक महापुजारी जी का स्वर शांत हो गया—'तुम्हें अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान रखना परमावश्यक है, तुम जम्बूद्वीप के भावी सम्राट होगे—तुम्हें अपने किसी कार्य से, अपने किसी आचरण से प्रजा को उंगली उठाने का अवसर नहीं देना चाहिए। देख रहे हो, स्वच्छाकाश पर विचरण करते हुए उस चन्द्र को...? इतना धवल होते हुए भी क्या कलंक से बच सका है वह? मनुष्य का हृदय दुर्बल होता है, तनिक-सा फिसल पड़ने पर जन्मपर्यन्त के लिए कलंक लग जाता है। आज से तुम सावधान रहना...आओ मेरे साथ...।'

महापुजारी घूम पड़े। युवराज ने उनका अनुसरण किया।

चारु-चन्द्रिका भी बादलों की ओट में छिप गई। कुमुदिनी ने अपने नेत्र बंद कर लिए। पल्लव विकलता से हिल पड़े।

वाह प्रकम्पित हो तीव्र गति से प्रवाहित हो उठी, डाल पर बैठी हुई कोयल करुण-स्वर में कूक उठी।

सात

मनोहर वनस्थली के कोड में रहने वाले किरात एक सघन पर्कटी वृक्ष के नीचे वार्तालाप करने में तल्लीन थे।

भगवान अंशुमालि की अंतिम किरण-राशि अब भी इतस्ततः गगनचुम्बी वृक्षों की चोटियों पर नृत्य कर रही थीं। साध्य-समीर मृदुल गति से हिलोरें ले रहा था।

क्लांत पक्षीगण अपने नीड़ों की ओर मधुर कलरव करते हुए तीव्र वेग से उड़े जा रहे थे।

'भाई! ऐसा नायक किरात-समुदाय के विगत इतिहास में सहस्त्रों वर्षों में नहीं हुआ...।' एक किरात कह रहा था—'पर्णिक ने नायकत्व का कार्य जिस योग्यतापूर्ण विधि से संचालित किया है, वह सर्वथा स्तुत्य है—जितनी प्रशंसा उसकी की जाये थोड़ी है...।'

'इतनी छोटी अवस्था में इतनी योग्यता, मैं तो इसे देवी वरदान ही कहूंगा।' एक वृद्ध ने कहा।

'हमने इन दोनों माता-पुत्रों पर बहुत अन्याय किया था—मगर आज उनके लिए पश्चाताप हो रहा है, पर्णिक की योग्यता देखकर। नहीं मालूम था कि संसार से ठुकराई एक अभागिन का पुत्र आज इस प्रकार हमारा नायकत्व करेगा।'

'उसके नायक होते ही, देखो न कितना आश्चर्यचकित परिवर्तन हो गया है हममें और समस्त किरात समुदाय में। उसने मानो हमारे जर्जर एवं मृतप्राय शरीर में उष्ण रक्त संचारित कर दिया है—नवस्फूर्ति भर दी है।'

'पहले हममें से कितने ऐसे थे जो शस्त्र-संचालन पूर्ण रूप से नहीं जानते थे...आज पर्णिक की कृपा से हम लोगों ने भली प्रकार अस्त्रविद्या सीख ली है। हम लोग भली-भांति शत्रु से अपनी रक्षा करने में समर्थ हो गए हैं...पर्णिक की माता ने ही अपनी व्यवहार-कुशलता से हमें इतना साहसी बनाया है। अवश्य वह कोई स्वर्गीय देवी है।'

क्रमशः संध्या का आगमन होने लगा था। साथ ही उदय होते हुए भगवान मरीचिमाली की शुभ ज्योत्सना, वन प्रदेश पर बिखरने लगी।

किरात-समुदाय के सभी व्यक्ति-आबाल-वृद्ध-उस स्थल पर जाने लगे। नित्य संध्या को सब लोग वहां एकत्र होते थे और विविध विषयों पर वार्तालाप करते थे।

नायक पर्णिक हो आते हुए दोकर सब लोग उठ खड़े हुए। पर्णिक एक प्रशस्त शिला खंड पर आकर बैठ गया।

बहुत समय तक वार्तालाप होता रहा।

अन्त में दो प्रहर रात्रि व्यतीत होने के पश्चात् जब वह अपने झोंपड़े के द्वार पर पहुंचा तो देखा कि उसकी माता भूमि पर पड़ी खिसक रही है।

दीपक की ज्योति में उसकी माता के नेत्रों से अश्रु बिन्दुओं का निस्सरण स्पष्टतया दृष्टिगोचर हो रहा था।

साथ ही पर्णिक के उत्सुक नेत्रों ने देखा कि उसकी माता कोई हाथ में कोई प्रकाशमान वस्तु हैं।

पर्णिक घबराया हुआ झोपड़े के भीतर आया—'माता! उसने पुकारा ।'

उसकी माता चौंक पड़ी, उसका स्वर सुनकर।

'उसके नायक होते ही, देखो न कितना आश्चर्यचकित परिवर्तन हो गया है हममें और समस्त किरात समुदाय में। उसने मानो हमारे जर्जर एवं मृतप्राय शरीर में उष्ण रक्त संचारित कर दिया है—नवस्फूर्ति भर दी है।'

'पहले हममें से कितने ऐसे थे जो शस्त्र-संचालन पूर्ण रूप से नहीं जानते थे...आज पर्णिक की कृपा से हम लोगों ने भली प्रकार अस्त्रविद्या सीख ली है। हम लोग भली-भांति शत्रु से अपनी रक्षा करने में समर्थ हो गए हैं...पर्णिक की माता ने ही अपनी व्यवहार-कुशलता से हमें इतना साहसी बनाया है। अवश्य वह कोई स्वर्गीय देवी है।'

क्रमशः संध्या का आगमन होने लगा था। साथ ही उदय होते हुए भगवान मरीचिमाली की शुभ ज्योत्सना, वन प्रदेश पर बिखरने लगी।

किरात-समुदाय के सभी व्यक्ति-आबाल-वृद्ध-उस स्थल पर जाने लगे। नित्य संध्या को सब लोग वहां एकत्र होते थे और विविध विषयों पर वार्तालाप करते थे।

नायक पर्णिक हो आते हुए दोकर सब लोग उठ खड़े हुए। पर्णिक एक प्रशस्त शिला खंड पर आकर बैठ गया।

बहुत समय तक वार्तालाप होता रहा।

अन्त में दो प्रहर रात्रि व्यतीत होने के पश्चात् जब वह अपने झोंपड़े के द्वार पर पहुंचा तो देखा कि उसकी माता भूमि पर पड़ी खिसक रही है।

दीपक की ज्योति में उसकी माता के नेत्रों से अश्रु बिन्दुओं का निस्सरण स्पष्टतया दृष्टिगोचर हो रहा था।

साथ ही पर्णिक के उत्सुक नेत्रों ने देखा कि उसकी माता कोई हाथ में कोई प्रकाशमान वस्तु हैं।

पर्णिक घबराया हुआ झोपड़े के भीतर आया—'माता! उसने पुकारा ।'

उसकी माता चौंक पड़ी, उसका स्वर सुनकर।

उन्होंने शीघ्रतापूर्वक अपने अंचल में उस वस्तु को छिपा लिया और नेत्रों से प्रवाहित अश्रुकणों को पोंछती हुई बोली—'आओ वत्स।'

'तुम रो क्यों रही हो माताजी?' पर्णिक उनके पास बैठ गया—'तुम्हें ऐसी कौन-सी व्यथा, ऐसी कौन-सी वेदना, ऐसा कौन-सा दुख है—जिससे तुम सदैव व्यथित रहा करती हो? वह कौन-सी अप्रकट पीड़ा है जिसे तुम अपने पुत्र से भी कहने से संकोच कर रही हो? बोलो, मैं तुम्हारे सुख के लिए सब कुछ कर सकता हूं, माताजी। यदि मेरे जीवनोत्सर्ग से तुम्हें शांति मिल सके तो मैं सहर्ष अपने जीवन को तुम्हारे चरण-कमलों पर उत्सर्ग कर दूंगा। जिसने अपने रक्त मांस से मेरा पालन-पोषण किया, जिसने दुरुह यातनायें सहन कर मेरी रक्षा की, जिसने अनादर और अपमान झेला—केवल मेरे हेतु, ऐसी जननी के लिए कोई भी वस्तु अदेय नहीं हो सकती। माताजी, परीक्षा का समय है—मातृ ऋण के उऋण होने का अवसर दो, आज्ञा दो माताजी!'

'मुझे कोई भी दुख, कोई भी व्यथा नहीं हे, वत्स...।'

'माता! दुख है कि आज तक तुमने मुझे अपना पूर्व इतिहास नहीं बताया, इस समय अपने दुख का कारण भी नहीं बता रही हो, पुत्र पर यह अविश्वास क्यों?'

'अविश्वास!'

'अविश्वास ही तो है। तभी तो तुमने मुझे देखते ही जाने कौन-सी वस्तु आंचल में छिपा ली है।'

उसकी माता चौंक पड़ी।

'माताजी! जिस पावन आंचल में अब तक पर्णिक ने क्रीड़ा की हे, उसका स्थान पाने वाली वस्तु अवश्य मुझसे भी प्रिय है...मुझे बताओ माताजी। वह कौन-सी वस्तु है। कोई बात मुझसे गोपनीय रखकर मुझे असीम वेदना से विदग्ध न करो।'

'वह कुछ नहीं है, पर्णिकं'

'कुछ क्यों नहीं है, माताजी। वह बहुत कुछ है, तभी पर्णिक से भी अधिक उसका आदर है—उसका सम्मान है।' पर्णिक अपनी माता के सन्निकट आ रहा है—'मैं उस वस्तु को अवश्य देखूंगा...।' और उसने हठपूर्वक माता के आंचल से वह वस्तु निकाल ली।

वह था रत्नहार, जिसकी देदीप्यमान प्रभाव उस छोटे से झोंपडे को आलोकित कर रही थी।

'रत्नहार...।' चौंक पड़ा पर्णिक—'माताजी! यह मूल्यवान रत्नहार तुमने कहां से पाया? इस जर्जर झोंपड़े से यह अगम वैभव कहां से टपक पड़ा...?'

पर्णिक की माता के नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित हो चले—'वत्स! इस पवित्र रत्नहार को प्रणाम करो।' उन्होंने कहा।

पर्णिक ने उसे मस्तक से लगाया।

'यह कहां से आया माताजी...?' उसने पूछा।

उसकी माता कुछ न बोली, केवल पर्णिक के हाथ से वह हार लेकर यत्नपूर्वक यथास्थान रख दिया।

तुम्हें कौन-सी वेदना कष्ट दे रही है माताजी?'

'जाने दो वत्स! चलो भोजन कर लो।'

'कैसे भोजन कर लूं माताजी। तुम चिंता में विदग्ध होती रहो और मैं क्षुधा शांत करूं? पहले मैं तुम्हारी चिंता शांत करूंगा।'

'वह तो चिता पर ही शांत होगी, पर्णिक'

'नायक!' तभी झोंपड़ी के द्वार पर से किसी ने पुकारा।

पर्णिक त्वरित वेग से बाहर आया। देखा, एक वृद्ध किरात खड़ा था।

'क्या है...? है क्या पितृव्य...?' उसने पूछा।

‘पुत्र! सीमांत से दुर्मुख एक आवश्यक समाचार लेकर आया है। सब लोग एकत्र हैं, तुम भी चलो...।’

‘आवश्यक कार्य है...?’

‘हां, अत्यंत आवश्यक...।’ वृद्ध किरात ने कहा।

‘मैं चलता हूं।’ पर्णिक बोला—‘माताजी! कोई महत्त्वपूर्ण आवश्यक समाचार है। मुझे जाने की आज्ञा दो।’

‘जाओ वत्स...।’ माता ने कहा।

पर्णिक ने झुककर उनके चरण छुए। पुनः उस वृद्ध किरात के साथ उस ओर चल पड़ा, जहां किरात समुदाय उत्सुक नेत्रों से उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

सभी के नेत्रों पर आसन्न भय के लक्षण स्पष्टतया दृष्टिगोचर हो रहे थे।

पर्णिक के आते ही सब उठ खड़े हुए। पर्णिक ने निराक्षणात्मक दृष्टि से चारों ओर देखा—देखा उसने, सबके मुख पर आतंक व्याप्त है।

‘कहां है दुर्मुख?’ उसने एक प्रस्तर-शिला पर बैठते हुए पूछा।

एक किरात युवक ने आदरसहित आकर अभिवादन किया।

‘तुम अभी सीमांत से आ रहे हो?

‘जी हां...।’

‘क्या समाचार लाये हो?’

दुर्मुख ने अधरोष्ठ पर जीभ फेरते हुए कहा—‘खटबांग की घाटी (खैबर पास) के उस पार, एक सेना आ पहुंची है। सम्भव है कि शीघ्र ही वह हम पर आक्रमण कर दे।’

‘किसकी सेना है वह?’

‘सुना है कि मध्य अशांत महाद्वीप (एशिया) से आर्य सम्राट तिरमांशु अपनी सेना लेकर देश विजय करने निकले है। वही हो सकते हैं’

'इस प्रकार अनायास आक्रमण करने का तात्पर्य?'

'यह तो वही जानें, परन्तु गुप्त-रीति से पता लगाने पर ज्ञात हुआ है कि आर्य जाति के रहने के लिए मध्य अशांत महाद्वीप में स्थान की कमी है। अब वे देश-विदेश में अपना विस्तार चाहते हैं।

'वह किस प्रकार?'

'देश विजय करके वे उन देशों में अपनी जाति को बसायेंगे एवं अपनी सभ्यता तथा संस्कृति का प्रसार करेंगे, यही उनकी आकांक्षा है।'

'परन्तु यह तो न्यायसंगत आक्रमण नहीं है।'

'बिना बल प्रयोग के किसी नये धर्म एवं नई संस्कृति का का प्रसार नहीं होता, नायक महोदय!' दुर्मुख ने कहा—'यह समाचार इतना महत्त्वपूर्ण था कि इसे आपके पास अति शीघ्र पहुंचाना आवश्यक था। अब आप ही निर्णय करें कि इस विकट परिस्थिति में हमारा क्या कर्तव्य होना चाहिये?'

'हमारा कर्तव्य...?' पर्णिक दुर्दमनीय विचारों में निमग्न हो गया। उपस्थित किरात-समुदाय में धीरे-धीरे कानाफूसी होने लगी।

'यह समाचार शीघ्र ही द्रविड़राज के पास पहुंचाया जाना चाहिए...।' एक ने नम्र निवेदन किया।

'राजनगर पुष्पपुर यहां से सोलह योजन दूर है—यदि तुरंत ही किसी को न भेजा गया तो अनर्थ की संभावना हे।'

'जब तक पुष्पपुर समाचार भेजा जायेगा, तब तक तो उनकी सेना खटवांग की घाटी पार कर हमारे प्रांत में पहुंच जायेगी और हमारा निवास स्थान नष्ट-भ्रष्ट कर देगी।' एक दूसरे ने कहा।

'क्या खट्वांग जैसी दुरुह घाटी वे इतनी शीघ्रता से पार कर लेंगे...?' पहले ने पूछा।

'पुष्पपुर समाचार भेजने की कोई आवश्यकता नहीं...।' तीसरे ने कहा—'द्रविड़राज को अपने गुप्तचरों द्वारा अब तक यह समाचार मिल गया होगा, अथवा शीघ्र ही मिल जायेगा। समाचार मिलते ही द्रविड़राज स्वदेश-रक्षा का कोई उपाय करेंगे तो, तब तक...।'

'तब तक...।' पर्णिक उच्च-स्वर में बोला—'हमें ही स्वदेश रक्षा का भार ग्रहण करना होगा। भाइयों ! इस विषय पर अच्छी तरह विचार करने के पश्चात् मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं । कि ऐसी परिस्थिति में स्वदेश-रक्षा का पूर्ण दायित्व हम पर है। यदि हम अपने समुदाय की पूरी शक्ति का प्रयोग करे तो आर्य सम्राट की सेना को हम पर्याप्त समय तक रोक सकते हैं।'

'ठीक है...।' कई किरात एक साथ बोल उठे।

'तो प्रस्तुत हो जाओ अपना रक्तदान करने के लिए। आज समरांगनण रक्तपिपासु दृष्टि से हमारी ओर देख रहा है। बलि होना है तो स्वदेश पर बलि हो। मरना है तो अपनी आन पर मर मिटो, चलो। हमारे समुदाय में जितने नवयुवक हैं, सभी शस्त्र सज्जित हो जायें। कल प्रातःकाल हम लोग प्रस्थान करेंगे...।'

पर्णिक की वीरतापूर्ण ललकार ने किरात-युवकों में नव चेतना प्रवाहित कर दी।

□ □
□ □

'ऐसा न कहो माताजी।' पर्णिक ने अपनी माता के चरण पकड़ लिये—'मेरे हृदय में स्वदेश-रक्षा की भावना प्रबल हो उठी है। इतने दिनों तक मेरी नस-नस में वीरता का संचार कर, तुम अब चाहती हो कि मैं कायर बनकर देशद्रोहिता का कलंक अपने भाल पर लगा लूं। मेरे हृदय में उठी उमंग पर पानी के छींटे मारकर ठंडा न करो मां। एक वीरमाता के समान मुझे युद्ध क्षेत्र में जाने की अनुमति दो...दो न माताजी...।'

'वत्स! कैसे आज्ञा दूं तुम्हें? आज तक जिसे एक क्षण के लिए भी नेत्रों की ओट न किया, उसे कैसे समरभूमि में जाने को को सकती हूं। पर्णिक! मत जाओ। मत जाओ वत्स। युद्धभूमि की भीषणता सहन करना परिहास नहीं।'

'माताजी! आज जब परीक्षा का समय आया है तो दुरुह यातनाओं का स्मरण दिलाकर मुझे पथविमुख करना चाहती हो? जिसे आज तक तुमने वीरतापूर्ण गाथायें सुनाकर मरने-मारने का उपदेश दिया उसे आज तुम कायरता के साथ जीने का उपदेश दे रही हो, माताजी! आज क्या हो गया है तुम्हें...? मुझे जाने की आज्ञा दो, मैंने समस्त समुदाय को प्रातःकाल प्रस्तुत रहने की आज्ञा दे दी है।'

'तो जाओ पार्णिक, मुझे अधिक दुख न दो।'

पर्णिक पर वज्र गिर पड़ा—'ओह! क्या उसकी बातें तथ्यहीन हैं? यदि नहीं तो माता दुखी क्यों हो गई?'

पर्णिक को महान ग्लानि हुई। वह चिंताग्रस्त हो झोंपड़ी के एक कोने में जाकर पड़ रहा।

□ □
□ □

'ऐसी आज्ञा क्यों दे रहे हो नायक...?' उस वृद्ध किरात ने कहा—'आज देश पर विपत्ति के बादल गहरा रहे हैं, एक विदेशी हमें पददालित करना चाहता है, यह देखते हुए भी तुम मौन होकर बैठ जाना चाहते हो?'

'क्या करूं? माताजी की आज्ञा...।' पर्णिक का मस्तक लज्जा से झुक गया।

'कहां गया वह तुम्हारा सारा गर्व...?' भूतपूर्व नायक के पुत्र का तीव्र स्वर गर्जन कर उठा—'कहां गया वह तुम्हारा पराक्रम? कहां गई वह तुम्हारी अनोखी डींग? मेरी माताजी देवी हैं, पूजनीय हैं? अपनी माता को वीर

प्रसविनी कहते थे...? उसी के गुणगान में अहर्निश तल्लीन रहते थे? धिक्कार है ऐसी कायर माता की संतान पर।'

'चुप रहो...! चुप रहो नहीं तो...।'

'हां-हां बंद कर दो मेरा मुख, काट दो मेरी जीभ। तुम्हारे पास शक्ति है। पराक्रम है न। निर्बलों पर ही अपनी शक्ति का प्रयोग करना तुम्हारी माता ने सिखाया है। क्या असहायों पर ही शस्त्र का बल प्रयोग करना तुमने वीरता समझ रखी है? धिक्कार है तुम्हारी माता के इस आचरण पर और तुम्हारे जैसे कायर एवं अंध मातृ-भक्त पर।'

'..........' पर्णिक ने दोनों हाथों से अपने कान बंद कर लिए।

'तुम्हारी माता ने तुम्हें योग्य बनाया, तुम्हारी माता ने तुम्हें शस्त्र संचालन सिखाया, तुम्हारी माता ने तुम्हें अतुलित शक्ति प्रदान की...परन्तु आज वही तुम्हारी माता देश पर विपत्ति के समय भीरुता का पथ ग्रहण कर रही हैं आज वहीं तुम्हें पथ विमुख कर रही हैं, ऐसे समय जबकि तुम समरांगण में अपनी बलि देकर सदैव के लिए अपवनी और अपनी माता की कीर्ति कौमुदी उज्जवल कर सकते हो...। तुम वीर हो, बलशाली हो, निर्बलों एवं असहायों पर अपने प्रज्ज्वलित नेत्रों से क्रोध की वर्षा कर सकते हो— अपनी माता की आज्ञा के विरुद्ध एक भी कार्य नहीं कर सकते हो तुममें इतनी बुद्धि, इतनी शक्ति नहीं कि देश की संकटापन्न स्थिति में तुम अपनी माता की अवहेलना कर सको...तुम नपुंसक हो, कायर हो, भीरू हो...।'

नायक-पुत्र की व्यंग्यपूर्ण बातों से घबराकर पर्णिक अपनी माता के पास भागा।

'मुझे आज्ञा दो माताजी!' पर्णिक के नेत्रों में अश्रुबिन्दु झलक आये थे। वह मातृ-भक्त वास्तव में बिना अपनी माता की आज्ञा पाय कुछ भी कर सकने में असमर्थ था—'देखो माताजी! तनिक दृष्टि उठाकर आज किरात समुदाय की ओर देखो। सभी तुम पर वाक् वाणों की वर्षा कर रहे हैं।'

'करने दो वत्स! दुख में ही तो हमारा जीवन प्रस्फुटित हुआ है।'

'परन्तु तनिक अपने कर्तव्य पर ध्यान दो माताजी! वीर प्रसविनी होकर अपने पुत्र को भीरुता की गोद में समर्पित कर देना अन्याय होगा। तुम विचार भी नहीं कर सकीं कि इस समय मेरे हृदय में तुम्हारी भीरुता ने कितना दारुण शोर मचा रखा है। मैं जल रहा हूं कि मेरी माता का वीर हृदय नहीं, वरन् एक अनाथिनी का कायर हृदय बोल रहा है। मैंने ऐसा नहीं समझा था।'

'वत्स...!'

'मुझे आज्ञा दो माता जी।'

पर्णिक ने माता के समक्ष घुटने टेक दिये।

विवश होकर माता ने प्रेमपूर्वक उसके मस्तक पर अपना हाथ रख दिया। तत्पश्चात् आंचल में से वही रत्नहार निकालकर उसके गले में डाल दिया—'जाओ वत्स...! यह अपनी अमूल्य निधि, यह पवित्र रत्नहार मैं तुम्हें प्रदान करती हूं। यह कल्याणकारी है। इसे बहुत ही यत्नपूर्वक रखना। एक क्षण के लिए भी इसे अपने से विलग न करना, नहीं तो अनिष्ट होगा।'

पर्णिक ने माता की चरण-धूलि मस्तक से लगाई।

पुनः गर्दन में पड़े हुए उस अमूल्य रत्नहार को मन-ही-मन प्रणाम किया और उत्साह से भरकर शीघ्रतापूर्वक उस ओर चल पड़ा, जिधर दस सहस्र शस्त्रधारी किरात-युवक खड़े उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

पर्णिक को देखकर सबने जयघोष किया।

शीघ्र ही वह किरात सेना, तीव्रगति से खट्वांग घाटी की ओर अग्रसर हुई।

पर्णिक की माता झोंपड़े के द्वार पर उन वीरों का पद-संचालन तब तक देखती रही, जब तक कि सघन वनस्थली ने उन मदमस्त युवकों को अपने अंचल में छिपा नहीं लिया।

आठ

युवराज नारिकेल द्रविड़राज के प्रकोष्ठ के समक्ष आकर खड़े हो गये।

द्वारपायक ने मस्तक झुकाकर युवराज को सम्मान प्रदर्शन किया।

‘पिताजी क्या कह रहे हैं?’ युवराज ने द्वारपायक से पूछा।

‘प्रकोष्ठ में है। मध्याह्न से बाहर नहीं निकले हैं।’ द्वारपायक ने कहा।

‘तुम उन्हें सूचित करो कि मैं उनके दर्शनार्थ उपस्थित हुआ हूं...।’ युवराज ने कहा।

द्वारपायक सर झुकाकर प्रकोष्ठ के भीतर चला गया।

कुछ ही क्षण बाद वह बाहर आकर बोला—‘श्रीसम्राट आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।’

युवराज ने प्रकोष्ठ के भीतर प्रवेश किया।

द्रविड़राज उस समय संतप्त भंगिमा लिये, अश्रु-प्लावित नेत्रों से द्वार देश की ओर देखते हुए बैठे थे स्वर्णासन पर।

उनके केश बिखरे हुए थे। कपोलों पर अश्रु-बिन्दु झलक रहे थे। शरीर शिथिल हो रहा था, मानो पर्याप्त समय से वे चिंतासागर में गोते लगाते रहे हों।

सम्राट की दयनीय दशा देखकर युवराज को असीम वेदना हुई।

यद्यपि आज से पहले भी युवराज सम्राट को दुखी एवं म्लान देखा करते थे, परन्तु उनकी आज की हालत देखकर युवराज का कलेजा मुंह को आ गया। उनके नेत्र न जाने किस प्रेरणा से सिक्त हो उठे।

‘पिताजी...!’ उन्होंने आर्द्र स्वर में पुकारा।

‘आओ युवराज।’ द्रविड़राज ने अपनी करुण भंगिमा ठीक करने का व्यर्थ प्रयत्न किया—‘आओ बैठो।’

युवराज आकर शैया पर बैठ गये।

कुछ क्षण तक मौन रहकर उन्होंने सम्राट को मूक वेदना को समझने की चेष्टा की।

'आजकल आप दुखित क्यों रहते हैं, पिताजी...?' युवराज ने प्रश्न किया।

द्रविड़राज ने युवराज की ओर करुण नेत्रों से देखा।

'मैं आपसे यह पूछने की धृष्टता करता हूं कि अन्ततः इस दुख का कारण क्या है? नेत्रों में अश्रु-कण, मुख पर प्रखर वेदना के चिन्ह एवं अन्तस्थल में प्रज्जवलित ज्वाला—इन सबका कारण क्या है? आज तक मैं दुखित हृदय से आपकी सारी व्यथा देखता आ रहा था, आज पूछता हूं कि आपको कौन-सी मानसिक अशांति क्लेश दे रही है...? बोलिए पिताजी!' पुत्र की सांत्वनामयी कोमल वाणी सुनकर द्रविड़राज का मर्मस्थल द्रवित हो गया—वे फूट-फूटकर रो पड़े, अपने फूटे भाग्य पर—'जाने दो वत्स! मुझे कोई कष्ट नहीं।'

'कोई कष्ट नहीं, कोई व्यथा नहीं, कोई वेदना नहीं...?' यवराज ने प्रश्नसूचक दृष्टि से द्रविड़राज का मुख देखा, जिस पर कष्ट का साकार रुप, व्यथा की साक्षात झलक एवं वेदना की प्रखर ज्वाला स्पष्टतया दृष्टिगोचर हो रही थी—'कैसे कहते हैं कि आपको कोई कष्ट नहीं है, पिताजी...। तनिक अपनी म्लान मुखाकृति पर दृष्टिपात कीजिये—प्रतीत होता है, जैसे जगत की समग्र वेदना का साम्राज्य छाया हो आपके नेत्रों में। मुझे बताइये पिताजी। अपने दुख का कारण बताइये मुझे। यदि अपने प्राण देकर भी आपको प्रसन्न देख सका तो अपने को भाग्यशाली समझूंगा।'

'क्या करोगे सुनकर वत्स।' रहने दो। उस असीम वेदना का भार केवल मुझे ही वहन करने दो। जिस रहस्य को आज तक तुमसे प्रच्छन्न रखा है, उसे सुनकर व्यथित होने की चेष्टा न करो।

‘मैं उस भेद को सुनूंगा...अवश्य सुनूंगा। यदि आप बताने की कृपा न करेंगे तो मैं समझूंगा कि इस संसार में एक ऐसी भी वस्तु है, जिसे श्री सम्राट मुझसे भी अधिक चाहते हैं।’

‘ऐसा न कहो युवराज! तुम्हारे अतिरिक्त मेरा है ही कौन...? कौन है मेरे दुख का साथी...?’ सम्राट ने कहा—‘तुम सुनना ही चाहते हो वह गुप्त भेद...तो सुनो।’

हृदय पर पाषाण रखकर द्रविड़राज ने अपने दुख की गाथा, अपनी वेदना की करुण कहानी युवराज को आद्योपांत सुना दी।

अपनी अर्द्धांगिनी, राजमहिषी त्रिधारा को उन्होंने जो कटु राज्यदण्ड दिया था और राजमहिषी के बिछुड़ जाने से उनके हृदय पर जो बीत रही थी—सब कुछ सुना दिया।

वे बोले—‘सब कुछ किया, अपने न्याय को अटल रखा, फिर भी मेरा न्याय अधूरा रह गया। क्या यही न्याय है कि पत्नी असह्य वेदना का भार वहन करती निर्वासन का कष्ट झेले और पति राजभवन में षडरस का स्वाद लेता हुआ सुखपूर्वक अपने दिवस व्यतीत करे...? एक साधारण त्रुटि ने मुझे विदग्ध कर रखा है युवराज। मैं जल रहा हूं, भयानक मानसिक वेदना से। जिस समय वे गर्भवती थी...हाय ! आज वह न जाने कहां होंगी? बहुत खोज की परन्तु वे न मिलीं...न मिलीं वह पूजनीय देवी...।’

युवराज के नेत्र अश्रु-वर्षा कर रहे थे उस करुण कहानी को सुनकर। वे विचार कर रहे थे कि वास्तव में द्रविड़राज का हृदय कितना न्यायपूर्ण एवं निर्मल है।

जीवन में आज प्रथम बार उन्हें माता का अभाव प्रतीत हुआ। उनका हृदय अपनी माता की करुण-गाथा सुनकर हाहाकार कर उठा।

‘मैंने कठोर न्याय का पालन किया था, परन्तु अपने कर्तव्य का पालन न कर सका था...वह पवित्र रत्नहार भी, जिसके लिए यह सब हुआ, न जाने कहा लुप्त हो गया। पता नहीं कि राजमहिषी ही उसे अपने साथ लेती

गईं या किसी ने पुनः चुरा लिया। अवश्य ही किसी ने चुरा लिया होगा। राजमहिषी उसे अपने साथ नहीं ले जा सकती—यह मेरा दृढ़ अनुमान है। मैंने चोर का पता लगाने के लिए कोटिशः प्रयत्न किया, परन्तु सब निष्फल हुआ...!'

'मैं उस चोर का पता लगाने के लिए अवश्य प्रयत्न करूंगा, यदि कभी वह चोर मेरे हाथ लग गया तो उसके प्राणों से मैं उस पवित्र रत्नाहार के अपमान का प्रतिशोध लूंगा।' कहकर युवराज ने दांत पीस लिये।

उन्हें वास्तव में उस चोर पर असीम क्रोध आ रहा था जिसने उनके कुल के उस पवित्र रत्नाहार का अपहरण किया था।

'उस समय तुम्हारी अवस्था केवल तीन वर्ष की थी, वत्स! आज तुम युवा हो, तब से अब तक इतने वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी मैं राजमहिषी को भूला नहीं हूं और प्रतिदिन उनकी पूजा किया करता हूं।'

'पूजा...!' युवराज को आश्चर्य हुआ।

'हां। वह देवी थी—रुष्ट होकर यहां से चली गई, संसार के न जाने किस छोर में विलीन हो गई। अब नित्यप्रति उनकी उपासना करके ही अपने सन्तप्त हृदय को शांति प्रदान करने की चेष्टा करता हूं। देखोगे युवराज...उनकी प्रतिमा देखोगे? अपनी स्नेहमयी जननी की लावण्ययुक्त देदीप्यमान सुप्रभा देखोगे?'

द्रविड़राज उठ खड़े हुए—'आओ! इधर आओ मेरे पास।'

युवराज उनके पास चले आये।

'आज प्रथम बार तुम भी अपनी माता की स्वर्ण-प्रतिमा का दर्शन कर लो—प्रणाम कर लो उस देवी के चरण कमलों में...।'

द्रविड़राज ने अंतर्प्रकोष्ठ का द्वार धीरे से खोला और युवराज को उसके भीतर झांकने के लिए कहा।

युवराज चकित हो गये—यह देखकर कि उस छोटी-सी कोठरी के भीतर पूजा की सामग्री, गंध, धूप आदि सुव्यवस्थित रूप से रखे हुए हैं।

देव-प्रतिमा के स्थान पर एक सौंदर्यमयी देवी की स्वर्ण प्रतिमा विराजमान है।

युवराज ने घुटने टेककर नतमस्तक हो अपनी माता की उस स्वर्ण-प्रतिमा को प्रणाम किया।

युवराज को ऐसा लगा, मानो उस प्रतिमा ने अपना हाथ उनके मस्तक पर रखकर शुभाशीर्वाद दिया हो।

युवराज के नेत्रों के अश्रु-बिन्दु टपककर उस स्वर्ण प्रतिमा के समक्ष चू पड़े।

'देखो वत्स...।' द्रविड़राज ने कहा—'यही है तुम्हारी माता।'

'..........।' युवराज ने रिक्त नेत्रों से अपने अभागे पिता की ओर देखा।

'इस प्रतिमा का रहस्य कोई नहीं जानता वत्स! कोई भी नहीं जानता कि मैं मानसिक वेदना से विदग्ध होकर किसी प्रतिमा की आराधना किया करता हूं। मैं लोगों अपनी निर्बलता प्रकट करना नहीं चाहता, वत्स...।'

'सम्राट का हृदय सबल होना चाहिए। दुख की घनघोर घटाएं एवं वेदना की प्रचंड अगिन जिसे व्यक्ति न कर सके, वही सम्राट है।' युवरजा नेकहा —'चलिए! संध्योपासना का समय सन्निकट आ गया...महापुजारी जी प्रतीक्षा करते होंगे।'

द्रविड़राज एवं युवराज एक साथ ही प्रकोष्ठ से बाहर आये।

द्वारपाल ने झुककर दोनों को सम्मान प्रदर्शन किया।

□ □

□ □

राजोद्यान में एक सघन वृक्ष की स्थूल शाखा में हिंडोला पड़ा था, जिस पर झूल रही थी किन्नरी निहारिका—अपनी अगम सौन्दर्य-राशि बिखेरती हुई।

सघन घन के आवरण ने सूर्य भगवान का समसत तेज अपने अचल में प्रच्छन्न कर रखा था।

यावत् जगत पर एक अपूर्व उन्माद-सा छाया हुआ था, काले-काले बादलों की आकाश-मण्डल पर भाग दौड़ देखकर।

धीमी-धीमी वायु परिचालित होकर उस उन्माद में वृद्धि कर रही थी।

निहारिका प्रकृति के उस अपूर्व दृश्य से प्रभावित होकर हिंडोला झूल रही थी। झूलते समय उसके कुन्तलपास वायु के प्रबल वेग से झूमते हुए, उसके आरक्त कपोलों का चुम्बन करने लगते थे।

कभी-कभी उसके सुकोमल पैरों में पड़े हुए नूपुर, मधुर स्वर से झंकृत हो उठते। वह प्रसन्न-विभोर होकर प्रकृति की नीरव अल्हड़ता का आनंद उपभोग कर रही थी।

परन्तु उसके आनंद में बाधा पहुंची।

युवराज नारिकेल न जाने कहां से घूमते हुए आ पहुंचे।

किन्नरी ने हिंडोले पर से उतरकर सम्मान प्रदर्शन किया।

युवराज ने मधुर मुस्कान के साथ उसके अभिवादन का स्वागत किया और हिंडोले पर आ बैठे।

युवराज के बहुत आग्रह करने पर निहारिका भी उसी हिंडोले पर सिमटी सकुचाती-सी बैठ गई।

'आज बहुत दिनों पश्चात् मिलन हो रहा है।' युवराज ने कहा।

'श्रीयुवराज न जाने क्यों रुष्ट हो गये थे, तभी तो उपासना के अतिरिक्त और किसी समय दर्शन देने की कृपा नहीं करते...।' निहारिका ने अपनी मधुर वाणी द्वारा मधु-वर्षा करते हुए कहा।

युवराज किस मुख से बताते कि महापुजारी ने उन्हें उससे एकांत में मिलने का निषेध कर दिया है।

यह बात सुनकर कोमल कलिका के हृदय को कितनी ठेस एवं कितनी यंत्रणा पहुंचती...यह वर्णनातीत है।

'श्रीयुवराज क्या वास्तव में रुष्ट है...?' पूछा उसने वीणा विनिन्दित स्वर में।

'नहीं तो...।' युवराज ने कहा।

हिंडोला धीरे-धीरे डोल रहा था और उसी के साथ-साथ झूल रहा था किन्नरी का कला-पूर्ण शरीर।

उसके अवयव अज्ञात प्रेरणा से अचैतन्य होते जा रहे थे।

युवराज अनिमेष नयनों से उस कलामयी सुन्दरी का मुखमण्डल देख रहे थे।

'किन्नरी!'

'देव...!'

किन्नरी ने इधर-उधर देखा, देखकर तुरंत ही दृष्टि नीची कर ली।

युवराज ने वृक्ष की टहनी की ओर संकेत किया, जिस पर बैठे हुए दो पक्षी परस्पर चोंच से चोंच मिलाकर अपना प्रेम प्रकट कर रहे थे।

और वह पतली-सी टहनी भी हिंडोले की भांति झूल रही थी, मंथर गति से।

उन पक्षियों का वह कल्लोल मानो इन दोनों व्यक्तियों पर व्यंग्य वर्षा कर रहा था।

कितने सुखी थे वे दोनों उन्मुक्त मूक पंछी, जिन्हें संसार की कोई वेदना, व्यथा नहीं पहुंचा सकती थी।

जिनका एक अलग ही अनोखा संसार था।

किन्नरी दृष्टि नीचे किये बैठी थी—

युवराज ने अपने कंठप्रदेश से बहुमूल्य मणिमाला उतारकर किन्नरी के गले में डाल दी—'यह लो अपनी कला का पुरस्कार।'

किन्नरी ने लज्जित हो मस्तक झुका लिया।

मृदुल समीरण वेग से प्रवाहित हो उठा।

हिंडोला झटके के साथ झूल पड़ा।

'मेरे अहोभाग्य! जो देव ने मुझे पुरस्कृत किया...।' किन्नरी ने धीरे से कहा।

'देवता से पुरस्कार पाकर, कहीं देवता को भूल न जाना।' युवराज बोले।

'हमारे नींद भरे नेत्रों में देवता रोज स्वप्न बनकर आएं, यही मेरी आकांक्षा है...।'

कहते-कहते निहारिका के कपोल आरक्त हो उठे।

और उसी समय दूर से आती हुई चक्रवाल की मधुर स्वरलहरी उद्यान में गुंजरित हो उठी—

'मेरे नींद भरे नयनों में वो सपना बनकर आएं।

मैं उन्हें छिपा लूं आंखों में, वह मधुर हंसी बन मुस्करायें।

मेरे मन मंदिर में वह आयें, निज चरण कमल धर के।

मैं उन ही में लय हो जाऊं, कू कू उठूं वीणा स्वर में।।'

निहारिका हिंडोले पर से उतरकर खड़ी हो गई।

उसी समय सुरभित राजोद्यान में गाते हुए चक्रवाल ने प्रवेश किया।

चक्रवाल अभिवादन कर युवराज के समक्ष आकर खड़ा हो गया।

'श्रीयुवराज...!' चक्रवाल ने कुछ कहना चाहा।

'हां...हां..., कहो...क्या कहना चाहते हो तुम?'

'महापुजारी जी को अभी-अभी यह मालूम हुआ कि आप किन्नरी के साथ राजोद्यान में है।। वे इधर ही आ रहे हैं। आप शीघ्र यहां से मेरे साथ चलें।' चक्रवाल उतावली के साथ बोला।

युवराज उठ खड़े हुए और शीघ्रतापूर्वक चक्रवाल के साथ राजोद्यान से बाहर की ओर चल पड़े।

किन्नरी ने जाते हुए युवराज को अभिवादन किया।

अब राजोद्यान में केवल किन्नरी रह गई। वह राजोद्यान में इतस्ततः घूमकर मनोरंजन करने लगी।

एकाएक किन्नरी के पैर में एक तीक्ष्ण कांटा चुभ गया। किन्नरी एक आह छोड़कर भूमि पर बैठ गई।

उसी समय चरण-पादुका की ध्वनि सुनाई पड़ी और उद्दीप्त भंगिमां लिए महापुजारी ने वहां पदार्पण किया।

किन्नरी ने महापुजारी का चरण स्पर्श किया।

महापुजारी की तीव्र दृष्टि किन्नरी के मुख पर पड़ी—'श्रीयुवराज यहां आये थे...?' उन्होंने तीव्र स्वर में पूछा।

किन्नरी का सारा शरीर भय से सिहर उठा, परन्तु उसने तुरंत ही अपना सर हिलाकर यह प्रकट किया कि युवराज यहां नहीं आये थे।

महापुजारी ने ऐसी भंगिमा प्रदर्शित की, जैसे उन्हें उसकी बात पर विश्वास न हुआ हो।

'बोलो निहारिका! श्रीयुवराज यहां आये थे या नहीं?' परन्तु निहारिका के कुछ कहने से पहले ही, महापुजारी की दृष्टि निहारिका के कंठ में पड़ी युवराज की दी हुई मणिमाला पर जा पड़ी।

उनके नेत्र प्रज्जवलित हो उठे—'हें ! उन्होंने विकट रूप से हुंकार-भरी तो श्रीयुवराज यहां अवश्य आये थे—तुम्हारे कंठ में पड़ी हुई मणिमाला इसकी साक्षी है।'

किन्नरी को पैरों तले से पृथ्वी जैसे खिसकती-सी मालूम पड़ी।

अभी तक उसने उस मणिमाता पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया था और न तो उसे छिपाने का ही कोई प्रयत्न किया था।

तनिक-सी भूल ने अनर्थ कर डाला।

बिना एक शब्द बोले महापुजारी घूम पड़े और क्रोधपूर्ण भंगिमा से राजोद्यान के बाहर हो गये।

किन्नरी का हृदय धड़कने लगा।

उसने कसकर वह मणिमाला अपने हृदय से दबा ली, जैसे कोई बलपूर्वक उसे छीनने की चेष्टा कर रहा हो।

□ □

□ □

महापुजारी को तीव्र वेग से आते हुए देखकर द्वारपाल पार्श्व में हटकर खड़ा हो गया और झुककर उसने महापुजारी की चरण धूल मस्तक से लगाई।

'श्रीसम्राट को सूचित करो कि महापुजारी जी इसी समय उनसे मिलने को उत्सुक हैं। कार्य अत्यंत आवश्यक है...।' महापुजारी जी ने उतावली के साथ कहा।

द्वारपाल भीतर चला गया, वह क्षण-भर पश्चात् लौटकर बोला —'पधारिए।'

द्रविड़राज राज भी उन्हीं कष्टमयी विचारों में तल्लीन थे।

उनके नेत्रों में दुखातिरेक से आज भी अश्रु-कण विद्यमान थे।

परन्तु द्वारपाल ने सुनकर कि महापुजारी उनसे इसी समय मिलने को उत्सुक हैं, उन्होंने अपने नेत्र पोंछ लिए—भंगिमा ठीक कर ली।

महापुजारी आये।

सम्राट ने उनकी चरण-धूलि मस्तक से लगाई।

महापुजारी गरज उठे—'श्री सम्राट ! देख रहा हूं कि जो कभी द्रविड़कुल के इतिहास में नहीं हुआ, वही अब होने जा रहा है। जिस बात की आशंका मेरे हृदय में बहुत पूर्व से ही विराजमान थी, वह विश्वास में परिणत हो गई है।'

'................।' द्रविड़राज निस्तब्ध रहे।

'श्रीयुवराज के कार्यों की ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं श्रीसम्राट!' महापुजारी बोले—'वे किन्नरी निहारिका के अत्यधिक सम्पर्क में आ गये हैं। एक दिन मैंने उनको सावधान कर दिया था, परन्तु...।'

'क्या नारिकेल के विषय में आपकी यह धारणा है, महापुजारी जी...?' सम्राट आश्चर्यचकित हो उठे।

'श्रीसम्राट का अनुमान सत्य है।'

'महामाया करें यह धारणा असत्य हो, महापुजारी जी...। नारिकेल सलिल जैसा निर्मल एवं चन्द्रिका जैसा धवल है...।'

'श्रीसम्राट...!' तीव्र स्वर में बरस पड़े महापुजारी—'यौवन का आवेग आंधी के समान होता है। यह न भूल जाइये कि इस अवस्था में कोई भी प्रलयंकारी कार्य असम्भव नहीं।'

'क्षमा...। मुझे क्षमा करें, महापुजारी जी। मैं अभी नारिकेल को बुलाकर पूछता हूं।'

'उन्होंने अपनी मणिमाला प्रदान की है उसे।'

'मणिमाला...?' सम्राट का स्वर उत्तेजित हो उठा—'उसने मणिमाला प्रदान की है? वह अपनी वंश-मर्यादा विस्मृत कर बैठा है? अपने धवल वंश पर कलंक-कालिमा लगाना चाहता है वह...?'

क्रोधित द्रविड़राज आगे बढ़कर द्वार के सन्निकट चले आये —'पायक...।' और विकट करतल ध्वनि की उन्होंने।

'आज्ञा श्रीसम्राट...।' द्वारपायक ने सम्राट को अभिवादन किया।

'युवराज को बुलाओ—अभी।'

□ □

□ □

'जी हां! अभी-अभी महापुजारी सीधे श्रीसम्राट के पास गए हैं। मुझे ठीक से पता है...अब क्या होगा?' चक्रवाल ने शंकित स्वर में कहा।

युवराज के मस्तक पर चिंता की रेखायें खिंच आई।

'किन्नरी कहती थी कि महापुजारी जी ने आपकी प्रदान की हुई मणिमाला उसके कंठ-प्रदेश में देख ली है...।' चक्रवाल बोला।

'मणिमाला देख ली है...?' युवराज कांप उठे—'क्या कला की उपासना करना इतना बड़ा अपराध है? सौन्दर्योपासना में सदैव वासना ही क्यों दिखाई देती है इस दुनिया को...?'

'इस जगत के अधम प्राणी यह सब नहीं समझ सकते श्रीयुवराज।

'अधम प्राणी...यह किसे कह रहे हो तुम, चक्रवाल...? पिताजी को या महापुजारी को...? सावधान! फिर कभी ऐसा वाक्य मुख से न निकालना। पिता जी मेरे पूज्य हैं, महापुजारी गुरुदेव हैं—भला वे कभी हमारे अहित की कामना कर सकते हैं?'

'श्रीयुवराज मुझे क्षमा प्रदान करें—वह देखिए, श्रीसम्राट का द्वारपायक इधर ही आ रहा है।'

द्वारपायक ने आकर युवराज को अभिवादन किया और बोला—'श्रीसम्राट आपको इसी समय स्मरण कर रहे हैं। आप मेरे साथ ही चलने की कृपा करें।'

'चलो...! तुम घबराओ नहीं चक्रवाल। मैं पिताजी से सब स्पष्ट कह दूंगा।'

युवराज ने ज्योंही द्रविड़राज के प्रकोष्ठ में प्रवेश किया, द्रविड़राज का सारा क्रोध विलीन हो गया, युवराज की सहज निष्कलंक मुखाकृति का अवलोकन कर।

युवराज ने आगे बढ़कर महापुजारी एवं द्रविड़राज के चरण छुए।

'वत्स...! महापुजारीजी का कथन है कि तुम्हारे कार्यों से द्रविड़ कुल की उज्ज्वल मर्यादा विनष्ट होना चाहती है...।' द्रविड़राज ने स्थिर दृष्टि के युवराज के नेत्रों में देखते हुए कहा।

'यदि मेरा कोई आचरण महापुजारी को निकृष्ट प्रतीत हुआ हो तो मैं उनसे क्षमा मांगता हूं...युवराज ने संयत वाणी में कहा।

'आपकी मणिमाला कहां है, श्रीयुवराज...?' महापुजारी जी ने पूछा।

द्रविड़राज कांप उठे—यह सोचकर कि यदि कहीं युवराज ने मणिमाला के विषय में असत्य सम्भाषण किया तो उन्हें युवराज को भी उसी प्रकार न्याय दण्ड देना पड़ेगा, जिस प्रकार उन्होंने राजमहिषी त्रिधारा को दिया था।

द्रविड़राज तीक्ष्ण दृष्टि से युवराज की ओर देखते रहे। उनका हृदय तीव्र वेग से स्पंदित होता रहा।

'मैंने उसे किन्नरी निहारिका को प्रदान कर दिया...।' युवराज की गंभीर वाणी गूंज उठी, साथ ही द्रविड़राज प्रसन्नता से आल्हादित हो उठे युवराज की सत्यता पर।

'क्यों...? मणिमाल किन्नरी को प्रदान करने का कारण?' महापुजारी ने पूछा।

'उसकी सर्वतोमुखी कला का अवलोकन कर, किसी के भी हृदय में आकर्षण का उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है।'

युवराज का स्पष्ट कथनसुनकर महापुजारी अवाक् और स्तब्ध रह गये। क्रोधपूर्ण मुखमुद्रा गंभीर हो गई।

कई क्षण तक प्रकोष्ठ में नीरवता का साम्राज्य छाया रहा।

'जाओ...। फिर कभी किन्नरी से मिलने का प्रयास न करना...।' द्रविड़राज ने कहा।

महापुजारी एवं सम्राट के चरण छूकर युवराज अपने प्रकोष्ठ की ओर चले गए।

तब युवराज ने फिर कभी किन्नरी से मिलने का प्रयास नहीं किया।

यद्यपि दारुण ज्वाला उनके हृदय में धधकती रहती थी, तथापि अपने गुरुजनों के अभीष्ट मार्ग पर चलना ही तो उनका परम कर्तव्य था।

युवराज का हृदय रह-रहकर किन्नरी से मिलने के लिए व्यग्र हो उठता था।

अहर्निश किन्नरी का कलापूर्ण शरीर उनके नेत्रों के समक्ष नृत्य करता था।

कभी-कभी सुषुप्तावसथा में वे चिल्ला उठते थे, 'किन्नरी! कलामयी किन्नरी! कहां हो तुम...?'

किन्नरी को कम दुख न था। वह तो अबला थी, युवराज के विछोह से वह अत्यंत व्यथित थी।

केवल उपासना के समय राजमंदिर में दोनों का मिलन होता, परन्तु गुरुजी के भय से कोई भी एक-दूसरे से न बोलता।

जब किन्नरी अपने प्रकोष्ठ में अकेली बैठी रहती तो युवराज का स्मरण कर उसका कलेजा मुख को आ जाता। वह फूट-फूटकर रो उठती।

एक दिन, जबकि वह अपने प्रकोष्ठ में बैठकर अश्रुवर्षा कर रही थी, चक्रवाल उसके पास आ पहुंचा।

उसके नेत्रों में अश्रुकण देखकर चक्रवाल का दयार्द्र हृदय विचलित हो उठा।

उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा—'रोना बंद करो किन्नरी! फूटे भाग्य पर अश्रुपात करने की अपेक्षा, उस सर्वव्यापी अन्तर्यामी पर भरोसा करना अधिक उत्तम मार्ग है।'

'चक्रवाल!' किन्नरी सिसकती हुई बोली—'तुम्हारे युवराज मुझसे रुष्ट है क्या?'

'मेरे युवराज! और तुम्हारे नहीं...? भला वे कभी रुष्ट हो सकते हैं तुमसे? जिस प्रतिमा की वे आराधना करते हैं, उससे भला वे रुष्ट होंगे...वे तुमसे भी अधिक सन्तप्त है, किन्नरी! सूखकर आधे हो गये हैं वे।' चक्रवाल ने किन्नरी को सान्त्वना दी—'धैर्य रखो। हमारा जीवन, दुखों का सागर है। हमने यातना सहन करने के लिए ही इस आसार संसार में जन्म लिया है, इसमें दोष किसका? उन्हें भूल जाओ। वे युवराज हैं, जम्बूद्वीप के भावी अधीश्वर हैं, वे हमारे नहीं हो सकते किन्नरी।'

चक्रवाल ने दूसरी ओर मुख फेर लिया। कदाचित् उस अगम कलाकार के नेत्रों में भी अश्रु-कण उमड़ पड़े थे—अपनी कला-सहचरी की असीम वेदना देखकर।

□ □

□ □

अर्द्धरात्रि की भयानक नीरवता समग्र संसार को आच्छादित किये थी।

आकाश मार्ग पर प्रदीप्त कुछ तारिकायें सुषुप् संसार की ओर अनिमेष दृष्टि से देख रही थी, वायु निश्चल थी एवं प्रकृति निस्तब्ध!

चक्रवाल के नेत्रों में अब तक निद्रा के कोई लक्षण नहीं थे। वह अपने प्रकोष्ठ में छोटी-सी खिड़की के पास बैठा हुआ, आलोकित तारिकाओं की ओर मुग्ध-दृष्टि से देख रहा था।

उसके करों में थी वीणा ओर वीणा के तारों पर थी उसकी सधी हुई अंगुलियां।

निस्तब्धता प्रकम्पित करती हुई वीणा की ध्वनि क्षितिज की सीमा-रेखा दूने लगी।

साथ ही चक्रवाल के मुख से निकलती हुई रागिनी, मानो जड़ को चैतन्य एवं चैतन्य को जड़ बना रही थी।

वह अपनी रागिनी के तन्मय था।

उसे क्या पता कि इस समय भी जबकि यावत् संसार सुखद निद्रा में निमग्न है दो प्राणी उसके गायन से अत्यंत व्यथित हो रहे हैं।

किन्नरी निहारिका अपने प्रकोष्ठ में बैठी हुई चक्रवाल के गायन की विकल रागिनी सुन रही थी। उसके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी।

समय संसार रजत प्रकाशधारा में स्नान करता हुआ उस अगम कलाकार की कला में तन्मय था।

चक्रवाल भी तन्मय था केवल उसकी विकल स्वर-रागिनी थिरक रही थी —

‘आशा में मधुर मिलन की ये अपनी आंखें डाले।’
‘तुम ‘कान्त’ तड़पती रहती लेकर अंतर में छाले।।
जीवन की प्यारी घड़ियां, अब यों ही बीती जातीं।
ऊषा की लाली में अब, संध्या की झलक दिखाती।।’

एकाएक चक्रवाल के बंद द्वारदेश पर बाहर से किसी ने थपकी दी। उसने अपनी वीणा रख दी और द्वार की अर्गली खोल दी।

‘किन्नरी तुम...?’ एकाएक चक्रवाल के मुख से आश्चर्यजनक स्वर में निकल पड़ा—निस्तब्ध अर्द्धरात्रि में अपने द्वार पर वेदना-विक्षिप्त किन्नरी निहारिका को खड़ी देखकर।

किन्नरी, चक्रवाल को प्रकोष्ठ में चली आई और भीतर से पुनः कपाट बंद कर दिया। चक्रवाल ने देखा-उसकी मुखाकृति म्लान है, उसके नेत्रों में अश्रु-बिन्दु विद्यमान हैं । उसका समस्त सौंदर्य अस्त-व्यस्त हो रहा है।

'चक्रवाल...!' किन्नरी ने कांपते स्वर में पूछा।

'इस समय यहां आने का कारण?' चक्रवाल ने पूछा।

'अर्द्धरात्रि के समय में भी तुम्हारी कला का स्रोत प्रवाहित है? कभी रुकेगा भी या नहीं? या मुझे रुलाने में ही तुम्हें आनंद प्राप्त होता है।' किन्नरी ने अवरुद्ध कण्ठ से अपने आने का कारण बता दिया।

'तुम्हें वेदना होती है, निहारिका?'

'बाहर दृष्टिपात करो। सम्पूर्ण संसार वेदनाच्छन्न है—पल्लव रुदन कर रहे हैं, चन्द्रिका ओस की वर्षा करती हुई अपनी व्यथा प्रकट कर रही है...तुम क्यों ऐसा गाते हो चक्रवाल...? किसी को व्यथित करने से, रुलाने से, तुम्हें मिलता क्या है?'

'समझती हो कि तुम रुदन करती हो तो मैं हंसता हूं? किन्नरी! वेदना का प्रखरतम प्रतिरूप मेरे हृदय में भी विद्यमान है। सब कुछ खोकर बैठा हूं—अब इन गीतों का ही तो सहारा है। तुम इन्हें भी मुझसे छीन लेना चाहती हो।'

निहारिका को आश्चर्य हुआ।

उसने चक्रवाल के मुख की ओर दृष्टिपात किया।

वह चौंक पड़ी—चक्रवाल के नयन-कोटरों में वेदना के प्रतिरुप अश्रुबिन्दु देखकर।

चक्रवाल बोला—'तुम्हें व्यथा पहुंचती है तो वचन देता हूं—अब नहीं गाऊंगा।'

'गाओ! अवश्य गाओ।' निहारिका ने कहा—'ऐसी विकल रागिनी की वर्षा करो कि जड़ चेतन, सभी हाहाकारमयी व्यथा से रुदन करने लगें...गाओ चक्रवाल।' विक्षिप्त की तरह वह बोली। एक क्षण में ही उसकाविचारबदल गाय, चक्रवाल की व्था अवलोकन कर।

चक्रवाल ने किन्नरी की विक्षिप्तावस्था देख, अपनी वीणा उठाई।

वीणा की झंकार एवं चक्रवाल के स्वर का प्रकम्पन, एकाकार होकर गुंजारित हो उठा—

'रस बरसे, रस बरसे।'

अपनी प्यास छिपायेमन में, क्यों तरसे, क्यों तरसे।'

उसके गायन में पुनः बाधा पहुंची। किसी ने पुनः उसके बंद द्वार पर थपकी दी थी।

चक्रवाल चौंक पड़ा—किन्नरी कांप उठी।

'महापुजारी आये हैं—अवश्य उन्हें पता लग गया होगा कि तुम मेरे प्रकोष्ठ में हो...अब...!' चक्रवाल ने मंद स्वर में कहा।

उसका हृदय धड़क रहा था—किन्नरी को अर्द्धरात्रि के समय उस प्रकोष्ठ में देखकर महापुजारी न जाने क्या समझेंगे।

द्वार पर पुनः थपकी पड़ी।

किन्नरी व्यग्रतापूर्वक बोली—'तुम बताओ चक्रवाल! मैं क्या करूं? कहां जाऊं? यदि महापुजारी मुझे यहां देख लेंगे तो पीसकर पी जायेंगे—तुम्हें भी बुरा-भला कहे बिना रहेंगे।'

'क्या करूं...?' चक्रवाल हाथ मल रहा था।

'एक भूल के करण युवराज से बिछुड़ गई—आज दूसरी भूल के कारण तुमसे भी बिछुड़ जाना चाहती हूं, चक्रवाल। कोई मार्ग शीघ्र ढूंढ निकालो

—मुझे महापुजारी की क्रूर दृष्टि से बचाओ, चक्रवाल।' किन्नरी अत्यधिक भयभीत हो उठी।

तीसरी बार द्वार पर कुछ देर तक थपकी पड़ी।

चक्रवाल बोला—'अब मुझे द्वार खोलना ही चाहिये, किन्नरी। तुम पलंग के बिछावन पर लेट जाओ। मैं तुम्हें इसी में लपेट दूं। दूसरा कोई मार्ग नहीं...अब जो कुछ होगा देखा जायेगा...जल्दी करो।'

किन्नरी बिछावन पर लेट गई। चक्रवाल ने बिछावन के साथ उसे भी पलेटपकर पलंग के पायताने कर दिया और आगे बढ़कर धड़कते हुए हृदय से द्वार खोल दिया।

'मगर वह मानो आकाश से गिरा यह देखकर कि द्वारदेश पर महापुजारी की उग्र मूर्ति नहीं, वरन् युवराज की सौम्य एवं शांत प्रतिमा खड़ी है—कालिमाच्छन्न मुखमंडल लिए हुए।

चक्रवाल ने युवराज को मस्तक झुकाकर सम्मान प्रदर्शन किया। तब बोला—'पधारिये श्रीयुवराज।'

युवराज आकर उसी पलंग पर उसी बिछावन से उठंग कर पर बैठ गये।

बिछावन के भीतर छिपी हुई किन्नरी निहारिका का मृदुत शरीर अनिर्वचनीय आनंद से परिपूर्ण हो उठा।

'श्रीयुवराज के असमय पर्दापण का कारण?' चक्रवाल ने पूछा।

युवराज के हृदय में जो अगम वेदना अन्तर्हित थी, उसे शब्दों में व्यक्त करने की शक्ति किसमें थी।

फिर भी वे बोले—'नीरव रजनी को प्रकम्पित कर अवाध गति से प्रवाहित तुम्हारा गायन स्वर सुनकर मेरी निद्रा टूट गई। मुझे जो व्यथा हई वह वर्णनातीत है, चक्रवाल।'

'मैं श्रीयुवराज से इसके लिए क्षमा-प्रार्थी हूं।'

‘तुम ऐसे हृदय-विदरक गीत क्यों गाते हो, चक्रवाल?’

‘................।’ चक्रवाल चुप रहा।

किन्नरी के हृदय का स्पन्दन तीव्र हो गया।

‘व्यथित हृदय को तुम और व्यथित कर देते हो, चक्रवाल?’ बोले युवराज।

‘मैं विवश हूं श्रीयुवराज। चेष्टा करने पर भी मैं अपने को रोक नहीं पाता। हृदय की अगम व्यथा स्वरों के साथ फूट ही पड़ती है। चक्रवाल ने कहा।

‘तुम अपनी व्यथा सुना-सुनाकर सभी को व्यथित करना चाहते हो? चक्रवाल, अब ऐसे गीत ने गाया करो—मुझे अत्यधिक दुख होता है।’

‘किन्नरी से आप रुष्ट क्यों हैं श्रीयुवराज...?’

‘ओह! उस कलामयी का स्मरण न दिलाओ चक्रवाल। वह देवी है उसकी उपासना मेरे लिए दुर्लभ है।’

‘वह आपके लिए अत्यंत व्यग्र रहती है।’

‘व्यग्र रहती है? वह तो कलामयी है चक्रवाल! वह क्यों मेरे लिए व्यथित होगी?’ युवराज ने कहा।

चन्द्रमा की एक प्रकाश रेखा खिड़की की राह आकर उस लिपटे बिछावन पर नृत्य कर रही थी।

युवराज ने उसे देखा।

वे चौंक पड़े—बिछावन में कुद प्रकम्पन होता हुआ देखकर।

'यह क्या बात है, चक्रवाल? इस बिछावन में कम्पन क्यों हो रहा है?' युवराज ने पूछा।

'कहां श्रीयुवराज।' चक्रवाल ने कहा, परन्तु उसका मन तीव्र वेग से हंस पड़ना चाहता था।

'मैं इसे देखना चाहता हूं।' कहते हुए युवराज ने बिछावन उलट दिया।

किन्नरी की सौंदर्य राशि आलौकित हो उठी।

युवराज आश्चर्यचकित हो गये—अपनी हृद्देवी को इस प्रकार वहां उपस्थित देखकर।

'किन्नरी कलामयी!' युवराज का हृदय उमड़ पड़ा।

'देव!' वह सिसक उठी जोरों से।

युवराज ने आगे बढ़कर उसका कोमल हाथ पकड़ लिया।

दोनों के नेत्र सिक्त हो रहे थे। दोनों के नेत्रों से एक साथ ही दो बूंद आंसू भूमि पर एक ही स्थान पर टपक पड़े।

उन दोनों अश्रु बिन्दुओं का वह मधुमय मिलन अतीव करुणाजनक एवं हृदयद्रावक था।

नौ

जम्बूद्वीप के उत्तर में अवस्थित गिरराज हिमालय अभेद्य एवं दुरुह है।

हिमाच्छादित गगनचुम्बी शिखर, भयानक कण्टकाकीर्ण वन, और भयानक घाटियों से परिपूर्ण, यह असम्भव है कि कोई मध्य अशांत महाद्वीपों से इस ओर आ जाये।

परन्तु प्रकृति ने मार्ग बना ही दिया है—वह मार्ग है खट्वांग की घाटी। यद्यपि यह घाटी भी समतल एवं अकंटक नहीं है—फिर भी साहसी मनुष्य के लिए इस मार्ग द्वारा, उस पार से इस पार चले आना असम्भव नहीं।

इस घाटी द्वारा आर्य-सम्राट तिगमांशु की विशाल सेना ने, उस पार से इस पार की शस्यश्यामला भूमि पर पदार्पण किया।

और घाटी के समीप ही सेना ने शिविर डाल दिया।

सहस्रों शिविर पड़ गये, मानो एक नगर ही बस गया उस भयानक वनस्थली के क्रीड़ में।

इस समय संध्या की लालिमा, क्रमशः अपना आंचल प्रसारित कर रही थी।

एक शिविर में बैठे हुए भीमकाय आर्य सम्राट तिरमांशु अपने कुछ नायक योद्धाओं के साथ कोई गुप्त मंत्रणा करने में तल्लीन थे, क्योंकि उन्हें अभी-अभी ही समाचार मिला था कि किरातों का एक सशस्त्र दल उनका मार्ग अवरुद्ध करने के लिए, वहां से केवल अर्द्धयोजन की दूरी पर अपना शिविर डाले पड़ा है।

'गुप्तचर! तुम्हारा कहना है कि किरातों की सेना बहुत छोटी है—यही न?' आर्य-सम्राट ने पूछा।

'जी श्रीमान्! यही कोई एक सहस्र होंगे...मगर जो भी हैं, सभी योद्धा हैं —दास को मारकर तब मरने वाले हैं—और उनका नायक उसकी न पूछिये। मैंने देखा तो नहीं, गुप्त रीति से सुना है कि वह अभी बालक है, लेकिन आर्य-सेना का कदाचित् ही कोई वीर उसके समक्ष ठहर सके।' दूत ने नतमस्तक होकर कहा।

'ऐसा है वह...?'

'जी हां। किरात-सेना उसकी आज्ञा पर अपने प्राण दे सकती है। यदि हम प्रयत्न करके उस सेना को अपनी सेना मिला सकें तो हमारी शक्ति बहुत बढ़ जायेगी—साथ ही उनसे हमें मार्ग-दर्शन में अतीव सहायता मिलेगी।'

'ऐसा सम्भव हो जाये तो अत्यंत उत्कृष्ट है।'

'गुप्तचर और स्वयं आर्य-सम्राट तिग्मांशु अश्व पर आरुढ़ हो, भयंकर जंगल में परिभ्रमण करते हुए निर्धारित दिशा की ओर चल पड़े।

बहुत दूर चले जाने के बाद एक स्थान पर गुप्तचर ने अपना अश्व रोका। दोनों अश्व से उतर पड़े।

'उधर, उन आकाश चूमे वृक्षों की ओर देखिए, उनकी शीतल छाया में किरातों की सेना शस्त्र-सज्जा अवस्था में ही विराम कर रही है।' गुप्तचर ने कहा।

दोनों पैदल ही उस ओर बढ़ चले।

अंधकारपूर्ण रात्रि थीं मार्ग कंटकाकीर्ण एवं दुरुह था। बहुत बचाकर दबे पांव वे चल रहे थे।

कुछ दूर चले जाने पर एकाएक सम्राट चौंककर खड़े हो गए।

उनके कान के पास से ही कोई सरसराती हुई वस्तु तीव्र वेग से निकल गई थी।

'अवश्य ही यहां पर कोई शत्रु उपस्थित है, उसी ने हम पर तीर चलाया है गुप्तचर। लेट जाओ भूमि पर शब्द न हो।' सम्राट ने कहा।

दोनों भूमि पर लेटकर इधर-उधर ही आहट लेने लगे, परन्तु पुनः कोई शब्द सुनाई न पड़ा और न कोई आकृति ही दिखाई दी।

धीरे-धीरे आर्यसम्राट और गुप्तचर उठे और अतीव सावधानी से पुनः आगे की ओर बढ़ने लगे।

परन्तु चारपग आगे बढ़ते ही पुनः एक तीर सरसराता हुआ सम्राट की दक्षिण भुजा में एक साधारण खरोंच करता हुआ निकल गया।

सिहरकर सम्राट एवं गुप्तचर पास के एक दीर्घकाय वृक्ष की ओट में खड़े हो गये और विस्फारित नेत्रों से चारों ओर के घनीभूत अंधकार में अपने शत्रु की खोज करने लगे।

परन्तु ऐसा मालूम होता था कि उस वनस्थली के कोने-कोने में भयानक पिशाच परिभ्रमण कर रहे हों और उन्हीं का यह कार्य है।

सम्राट एवं गुप्तचर नीरव खड़े थे, उस वृक्ष की ओट में।

एकाएक ठीक उनके पीछे से कठोर गर्जन सुनाई पड़ा—'सावधान! जहां हो वहीं खड़े रहो।'

सम्राट एवं गुप्तचर आश्चर्यातिरेक से घूम पड़े।

उन्होंने देखा, ठीक उनके पीछे खड़ा था एक धनुर्धारी किरात युवक, जिसके कार्मुक पर चढ़े हुए दो तीर इन दोनों के वक्ष की सीध में तने हैं।

सम्राट ने दांत पीसे और तुरंत ही उनके हाथ कृपाण की मूठ पर जा पड़े।

'सावधान...।' किरात युवक बोला—'हाथ जहां हैं वहीं स्थिर रहें। इस समय सारा वन्यप्रदेश किरातों से भरा पड़ा है। आपके नेत्रों से ये नेत्र अधिक दूरदर्शी है। अच्छा हो, आप लोग सीधे हमारे नायक के पास चलें।'

सम्राट तिग्मांशु आश्चर्यचकित रह गए, उस वीर किरात युवक की बातें सुनकर।

जहां एक साधारण युवक इतना शौर्यवान है तो उनका नायक कैसा होगा? वे सोचने लगे।

किरात युवक ने अपना कार्मुक कंधे से लटका लिया और आगे-आगे चल पड़ा।

सम्राट और गुप्तचर ने उसका अनुसरण किया। उस स्थान पर, जहां वृक्ष की सघन छाया के नीचे किरात सेना पड़ी थी, वहां आकर वह किरात युवक एक ऊंचे शिलाखंड पर बैठ गया।

उस युवक के साथ दो अपरिचितों को भी आया देख, समग्र किरात युवक उस स्थल पर एकत्रित हो गये।

'आप लोग कौन हैं...?' पूछा उस युवक ने।

'अपने नायक को बुलाओ, मुझे उससे कुछ आवश्यक बातें करनी हैं।' सम्राट ने कहा।

'नायक तो यही है।' किरात समुदाय में से किसी एक ने कहा।

'यही है।' चौंककर आर्य-सम्राट ने उस युवक को देखो, जो इस समय शिलाखंड पर बैठा हुआ मंद-मंद मुस्करा रहा था।

उसके कंठ प्रदेश में एक मूल्यवान रत्नहार था, जिसकी मणियों से मंद-मंद प्रकाश निकल रहा था। सम्राट को महान् आश्चर्य हुआ यह सोचकर कि ऐसा मूल्यवान रत्नहार कदातिच् उनके राजकोष में भी नहीं है।

'आपका परिचय?' नायक ने पूछा।

'मैं हूं आर्य सम्राट, तिग्मांशु।'

'आर्य सम्राट तिग्मांशु।' पर्णिक ने स्थिर वाणी में दुहराया, तत्पश्चात् उन्हें उचित स्थान पर बैठने का संकेत करते हुए बोला—'आपके यहां आने का तात्पर्य?'

'इसके प्रथम कि मैं कुछ कहूं...मैं यह पूछना चाहता हूं वीर युवक कि तुम्हारे यहां आने का कारण क्या है?'

'आपके मार्ग में बाधा उपस्थित कर आपको अग्रसर होने से रोकना —यही है हमारे यहां आने का कारण...।' पर्णिक ने निर्भीक भाव से उत्तर दिया।

'तुम मुझे अग्रसर होने से क्यों रोकने चाहते हो।'

‘क्योंकि स्वदेश रक्षा का उत्तरदायित्व प्रत्येक व्यक्ति पर समान रूप से होता है।’

‘परन्तु मैं तो इस देश में मित्रता स्थापित करने आया हूं।’

‘परन्तु आर्य सम्राट! मित्रता के लिए साथ में इतनी विशाल सेना की आवश्यकता नहीं पड़ती। क्या आप बल प्रयोग द्वारा मित्रता स्थापित करना चाहते हैं।’

‘नायक!’ आर्य सम्राट मुस्करा उठे—‘मैं तुम्हारे बुद्धि-चातुर्य की प्रशंसा करता हूं। धन्य है तुम्हारी माता जिसने तुम्हें जन्म दिया।’

‘आप भी धन्य हैं, श्रीमान्। अपनी माता की प्रशंसा करने वाले को मैं आदर की दृष्टि से देखता हूं।’ पर्णिक ने कहा।

‘देखो नायक’ सम्राट गंभीर वाणी में बोले—‘हमारा आर्य-धर्म संसार में सर्वोच्च है। हम लोग उसके कट्टर अनुयायी हैं। उसी धर्म का प्रसार करने हम निकले हैं...हमारे यहां आने के दो मुख्य कारण हैं। प्रथम तो यह कि हमें रहने के लिए मध्य अशांत महाद्वीप में स्थान का बहुत अभाव है,अतः हम यहां अपने कुछ मनुष्यों को बसाना चाहते हैं। इस देश से अच्छा निकटतम कोई भी देश नहीं है कि हम वहां जाकर बस सकें—इसलिए हम यहां आये हैं। दूसरा कारण यह है कि यहां हम लोग अपनी सभ्यता का प्रसार करना चाहते हैं।’

‘परन्तु अपना धर्म एवं अपनी संस्कृति त्यागकर, आपकी सभ्यता को कौन स्वीकार करना चाहेगा, श्रीमान्?’ पूछा पर्णिक ने।

‘तुम अंधकार में हो नायक उत्कृष्ट संस्कृति को ग्रहण करना मनुष्यमात्र का परम कर्तव्य हे।’

‘अगर कोई इसके लिए प्रस्तुत न हो तो...?’

‘तो इसके लिए बल प्रयोग करना मैं राजनीति का एक अंग समझता हूं।’

'आपको जानना चाहिये श्रीमान! कि पर्णिक की माता ने उसे मरना सिखाया है, जीना नहीं...।' पर्णिक ने गर्व से कहा।

'धन्य है तुम्हारी माता!'

आर्य सम्राट के मुख से पुनः अपनी माता की प्रशंसा सुन पर्णिक का मन आर्य सम्राट की शालीनता पर पानी-पानी हो गया।

'मगर श्रीमान्। हमने स्वदेश-रक्षा के निमित्त यह अभियान किया है।'

'तुम्हारी स्वदेश-भक्ति प्रशंसनीय है, वीर युवक मैं तुम्हारे स्वदेश का अहित चिंतक नहीं हूं। मैं अपने रहने के लिए कुछ भूमि चाहता हूं और चाहता हूं, अपने उत्कृष्ट धर्म का प्रसार। यदि यह कार्य नम्रतापूर्वक पूर्ण हो जाय तो बल प्रयोग करना मैं कभी नहीं चाहूंगा।'

'...........।' पर्णिक निस्तबध रहकर आर्य सम्राट की बातों पर विचार करता रहा।

'मैं इसी हेतु तुम्हारे पास आया हूं, नायक मैं अपने कार्य में तुम्हारी सहायता करना चाहता हूं—तुम्हें अपनी सेना में सम्मिलित करना चाहता हूं। तुम्हारी सम्मिलित होने से हमारी शक्ति द्विगुणित हो जायेगी...यों तो मैं बल प्रयोग भी कर सकता था, मगर तुम्हारी सहृदयता एवं वीरता से मैं अत्यंत प्रभावित हुआ हूं।'

'परन्तु मैं इसे अस्वीकार करता हूं, श्रीमान्।'

'इसका कारण...? इधर देखो, आर्य-सम्राट तिग्मांशु आकर एक तुच्छ भिक्षा मांग रहे हैं और तुम अस्वीकार कर रहे हो? क्या तुम्हारी माता ने तुम्हें यही शिक्षा दी है कि अपने पास आये हुए अतिथि की प्रार्थना पैरों तले कुचल दो? क्या तुम्हारी माता ने तुम्हें यही सिखाया है कि तुम अपने पास सहायता के लिए पास आये हुए व्यक्ति का अपमान एवं तिरस्कार करो?'

'...........।' पर्णिक आपादमस्तक-कांप उठा।

'क्या तुम्हारी पूजनीय माता ने तुम्हें यही आदेश दिया है कि तुम स्वदेश रक्षा के अभिमान से ग्रस्त होकर, सुदूर से आए हुए अतिथि का, जिसका कोई दूषित उद्देश्य नहीं—निरादर करो? नायक यह तुम्हारा घर है, यहां तुम्हें सभी सुविधायें प्राप्त हैं....हैं न?'

'हम विदेशी हैं, नाना प्रकार के कष्ट झेलते हुए हम यहां, तुम्हारे देश में तुम्हारे पास तक आये हैं—और तुम हमें ठुकरा रहे हो। क्या यही तुम्हारी माता का सदुपदेश है?'

'..........।' पर्णिक धर्म-संकट में पड़ गया।

अपनी माता का आक्षेप, वह सहन नहीं कर सकता था। वह स्तब्ध हो उठा, आर्य सम्राट की बात सुनकर।

'बोलो तुम्हारा क्या विचार है?' पूछा आर्य सम्राट ने।

'मैं आपका साथ दे सकता हूं।'

'दे सकते हो। वीर युवक, तुम्हारा अभिनंदन करता हूं मैं...।'

'परन्तु एक शर्त पर।'

'वह क्या...?' सम्राट ने पूछा।

'वह यह कि आपको मुझे कृपाण युद्ध करना होगा।'

और पर्णिक ने कृपाण खींच ली।

आर्य सम्राट युवक की स्फूर्ति देखकर आश्चर्यचकित हो गये।

आज तक किसी व्यक्ति ने उनसे इस प्रकार निर्भीकतापूर्वक बातें नहीं की थीं और न युद्ध में कोई आर्य सम्राट को ललकार ही सकता था।

पर्णिक की स्फूर्ति एवं उसका आवेश देखकर आर्य सम्राट को हंसी आ गई, स्वतः बुदबुदाये—तो यह नादान युवक आर्य सम्राट का हसतकौशल देखना चाहता है? इसे कृपाण के दो-चार हाथ दिखा देने चाहिए।

उन्होंने अपनी कृपाण खींच ली, परन्तु कुछ ही क्षणों में उन्हें ज्ञात हो गया कि किरातों की उस क्षुद्र टोली का नायक वास्तव में समस्त आर्य सेना का नायक होने की योग्यता रखता है।

वे चकित हो उठे, उस किरात युवक का अद्भुत पराक्रम देखकर।

'आज तुमने आर्य सेना के सर्वश्रेष्ठ वीर का मानमर्दन किया है, वीर युवक सम्राट ने कहा—'मैं तुम्हें आर्य सेना का सेनाध्यक्ष नियुक्त करता हूं।'

'परन्तु यह पद मैं तभी स्वीकार कर सकता हूं, आर्य सम्राट! जबकि आप मुझे यह आश्वासन दें कि हमारी मान-मर्यादा पर कुठाराघात न करेंगे।'

'विश्वास को पैरों तले रौंदकर अपना मार्ग मैं संकीर्ण नहीं बनाना चाहता वीर युवक मैं तुम्हें आश्वासन देता हूं।'

'तो मुझे स्वीकार है।'

किरात समुदाय के जयघोष से आकाशमंडल गूंज उठा।

अनुभवहीन युवक पर्णिक ने आर्य सम्राट की सहायता करना स्वीकार कर लिया।

वह निकला था देश की रक्षा करने, मगर राजनीति-कुशल आर्य सम्राट की चिकनी-चुपड़ी बातों में फंसकर वह अपने पवित्र ध्येय से च्युत हो गया।

दस

राजसभा में घोर नीरवता व्याप्त थी। सभी की मुखाकृति म्लान एवं मुद्रा भयभीत थी।

द्रविड़राज स्वर्ण-सिंहासन पर विराजमान थे। उनसे भी उच्चासन पर आसीन थे महापुजारी पौत्तालिक

युवराज एवं नगर के सभी गणमान्य सज्जन उपस्थित थे।

आज राजसभा में कई महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार-विनिमय हो रहा था।

एकाएक महापुजारी ने गुप्तचर से पूछा—

'आर्य सम्राट के इस प्रकार अचानक आक्रमण का कारण क्या हो सकता है?'

'गुरुदेव!' पास ही खड़े हुए गुप्तचर ने नतमस्तक होकर उत्तर दिया —'सुनने में आया है कि आर्य सम्राट मध्य अशांत महाद्वीप से कुछ आर्यजनों को यहां लाकर बसाना चाहते हैं—ताकि उन लोगों द्वारा यहां पर आर्य संस्कृति का प्रसार हो।'

'................' द्रविड़राज के मस्तक पर दुश्चिन्ता की रेखायें उभर आयीं। वे अपना सिंहासन छोड़कर उठ खड़े हुए।

'प्रिय सज्जनों!' उच्च स्वर में बोले वे—'आज युगों की सुख-शांति के बाद, क्रांति का समय आया है। एक विदेशी सम्राट ने हम पर अन्यायपूर्ण आक्रमण किया है....हम सदा से स्वाधीन रहे हैं, अब पराधीनता को कैसे स्वीकार कर सकते हैं?'

सभा में पूर्ववत् नीरवता व्याप्त रही।

'अपना देश हम विदेशियों को कैसे सौंप सकते हैं...?'

सारी राजसभा नीरवता में डूबी हुई द्रविड़राज का भाषण सुन रही थी।

हमें इस आक्रमण का प्रत्युत्तर देना ही होगा। हमें अपने स्वत्व के लिए वीरतापूर्वक, समरांगण में मर मिटना है। यह जम्बूद्वीप हमारा था, हमारा है और हमारा ही रहेगा। हम लोग इस पर विदेशियों के पैर स्थिर नहीं होने दे सकते...वे बल-प्रयोग द्वारा हम पर राज्य नहीं कर सकते।'

द्रविड़राज ने स्थिर दृष्टि से राजसभा के प्रत्येक व्यक्ति की ओर देखा।

'वीरो! क्या तुम यह चाहते हो कि यह शस्य-श्यामला भूमि विदेशियों के पैरों तले रौंदी जाय? क्या तुम चाहते हो कि हम अपनी सुख-शांति और मान-मर्यादा विदेशियों को समर्पित कर दें...क्या तुम चाहते हो कि अपना सब कुछ लुटाकर अपनी सारी सम्पदा विदेशियों के पैरों पर रखकर स्वयं

भिखारी बन बैठे? क्या तुम चाहते हो कि अपनी जन्म भूमि के श्वेत सुकोमल पैरों में सर्वदा के लिए परतन्त्रता की लौह- श्रृंखलायें डाल दी जायें?'

'नहीं! हम लोग यह कभी स्वीकार नहीं कर सकते...।' सभा गर्जन उठी —'हम चाहते हैं स्वदेश की रक्षार्थ अपने प्राणों की आहुति देना।'

'धन्य है! पुष्पपुर के वीर नागरिको आप लोग धन्य हैं।' महापुजारी बोले।

'आज हमारी परीक्षा का समय उपस्थित है।' युवराज खड़े होकर कहने लगे—'अब तक हम शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करते आ रहे थे—परन्तु आज जबकि हमारा देश सिक्त नेत्रों से हमारी ओर देख रहा है, हम कायर नहीं बनेंगे। उसकी रक्षा के लिए अपना तन-मन-प्राण सब-कुछ विसर्जन कर देंगे। हम अपनी वीरता पर कलंक न लगने देंगे, अपने पूर्वजों के पवित्र रक्त को दूषित नहीं होने देंगे...।'

'श्रीसम्राट...!' तभी द्वारपाल ने सभा में प्रवेश कर निवेदन किया—'द्वार पर आर्य-सम्राट द्वारा प्रेषित राजदूत उपस्थित है और श्रीसम्राट के चरण कमलों का दर्शनाभिलाषी है।'

राजदूत आया।

उसने नतमस्तक होकर द्रविड़राज एवं युवराज को अभिवादन किया।

'श्रीमान की सेवा में आर्य-सम्राट का शुभ संदेश लाया हूं...।' उसने कहा।

'शुभ संदेश...!' द्रविड़राज ने व्यंग किया—'कौन-सा शुभसंदेश है...? सुनाओ तो?'

द्रविड़राज विकृत हंसी हंसकर मौन हो गए।

दूत पुनः बोला—'हमारे सम्राट केवल अपने कुछ स्वजनों के जीविकार्थ आपके साम्राज्य के कुछ भाग की याचना करते हैं। अस्वीकार करने पर बल-प्रयोग भी सम्भव है।'

'बल प्रयोग...!' निर्भीक राजदूत ने उत्तर दिया---'बल प्रयोग राजनीति का अंतिम अस्त्र है।'

'याचना के साथ बल प्रयोग करना यही तुम्हारे देश की संस्कृति एवं तुम्हारे आर्य सम्राट की राजनीति है?'

'राजदूत के समक्ष श्रीमान् उसके सम्राट का अपमान कर रहे हैं।' दूत ने कहा—'मेरे सम्राट की याचना स्वीकार कर लेने से ही आप सब का लाभ एवं कल्याण है—आप लोग किसी प्रकार भी उनके प्रबल वेग को संभाल नहीं सकेंगे।''

संभाल नहीं सकेंगे...? राजदूत, जब तुम्हारे सम्राट की सेना से द्रविड़ सेना की मुठभेड़ होगी, तब वास्तविक बलाबल का निर्णय होगा।' द्रविड़राज बोले।

'श्रीमान को विदित हो कि किरात-युवकों का दल उनके नायक सहित, हमारे सम्राट की सहायता के लिए प्रस्तुत हो गया है और मुझे आशा है कि मार्ग प्रदर्शन में उनसे आशातीत सहायता हमें मिलेगी और विश्वास है कि आपकी सेना के तैयार होने से पूर्व ही हमारी सेना पुष्पपुर नगर में प्रवेश कर जायेगी...।'

'तुम भूलते हो राजदूत...। हमारी सेना पूर्ण रूप से तैयार है तुम्हारे आर्य-शिविर में पहुंचने के पूर्व ही वह वहां पहुंच जाएगी, यह तुम निश्चय समझ लो और अपने सम्राट से जाकर कह देना कि उन्होंने हम पर आक्रमण का विचार कर, अपने को हमारी दृष्टि में हेय एवं घृणित प्रमाणित किया हैं उनके इस आक्रमण से हमारे सम्मान पर धक्का लगा। इसके प्रतिकार के लिए वे प्रस्तुत रहें। द्रविड़राज की रक्त-पिपासातुर सेना शीघ्र ही तुम्हारे सम्राट का गर्व-खर्व करेगी...।' युवराज बोले।

राजदूत ने पूछा—'क्या यह श्रीमान् का अंतिम निर्णय है?'

'अवश्य।'

राजदूत ने झुककर अभिवादन किया और राजसभा से बाहर हो गया।

कई क्षणों तक राजसभा में घोर निस्तब्धता का साम्राज्य व्याप्त रहा।

कुछ देर बाद द्रविड़राज बोले—'हमें अत्यंत शीघ्र सम्पूर्ण तैयारी करके अपनी सेना गुप्त मार्ग द्वारा युद्धस्थल की ओर भेज देनी चाहिए ताकि सीमान्त पर ही हम आर्य सेना को रोक सकें। गुप्त मार्ग द्वारा वहां पहुंचना केवल दो घड़ी का कार्य है—सीधे मार्ग से वहां तक पहुंचने में दो दिन लग जायेंगे। परन्तु इससे पहले हम अपनी सेना युद्धभूमि की ओर भेजें, हमें एक सेनाधिपति की आवश्यकता है, जो इस कार्य का सफलतापूर्वक संचालन कर सके...। इस कार्य के लिए मैं स्वयं अपने को प्रस्तुत करता हूं।'

'पिताश्री!' युवराज बोले—'आपको कष्ट करने की आवश्यकता नहीं मैं सेनापति का कार्यभार सम्भाल लूंगा। मुझे आशा है कि मेरी यह तुच्छ याचना श्रीसम्राट को अस्वीकार न होगी।'

'युवराज!' द्रविड़राज बोले—'यह मेरे लिए सौभाग्य का विषय है कि तुम जैसा योग्य पुत्र स्वदेश के लिए रणवेदी पर बलि होने को प्रस्तुत है, परन्तु...।'

'परन्तु के व्यूह से बाहर आइये पिताजी। आज्ञा दीजिए। वचन देता हूं कि मैं जीते-जी स्वदेश पर कलंक न लगने दूंगा।'

'युवराज की जय हो।' सबने एक स्वर में जयघोष किया।

और युवराज इस युद्ध के लिए सेनाधिपति नियुक्त हुए।

महापुजारी चौंक पड़े, यह घोष सुनकर।

वे द्रविड़राज के निकट आकर धीरे से बोले—'श्रीसम्राट ! श्रीयुवराज को रणक्षेत्र में भेजना उचित नहीं होगा।'

'आपका अभिप्राय?'

वार्तालाप धीरे-धीरे हो रहा था ताकि कोई सुन न सके।

'इस वर्ष श्रीयुवराज की जन्मकुंडली में अनिष्टकारी ग्रह आ गये हैं...विपत्ति की आशंका है। अच्छा हो कि युवराज का जाना स्थगित कर, स्वयं आप युद्धक्षेत्र को प्रस्थान करें....।'

'यही ठीक होगा...।' द्रविड़राज ने निश्चय किया।

महापुजारी अकस्मात् उठ खड़े हुए।

उच्च स्वर में बोले—'श्रीयुवराज! समर भूमि में आपका जाना नहीं हो सकेगा।'

'इसका कारण...?' युवराज ने पूछा।

'श्रीसम्राट की आज्ञा।' महापुजारी बोले। युवराज ने द्रविड़राज की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा।

'युद्ध का संचालन कौन करेगा?' पुनः पूछा युवराज ने।

'स्वयं श्रीसम्राट।' महापुजारी ने कहा।

'यह कैसे हो सकता है, महापुजारी जी...। पिता कष्ट का सामना करते हुए युद्ध-क्षेत्र में प्रोणोत्सर्ग करे और पुत्र राजप्रकोष्ठ में बैठा हुआ आनंद का उपभोग करे...? यह अन्याय है गुरुदेव। ऐसा नहीं होना चाहिये, ऐसा नहीं हो सकता। मेरे जीवन की यह प्रबल आकांक्षा है। मैं युद्ध-क्षेत्र में अपने अब तक के अनुभव की परीक्षा करना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि मेरा यह अधम शरीर देश और पिता के कार्य-साधन में उत्सर्ग हो...।'

'युवराज!'

'पिताजी...!'

'तुम्हारा कर्तव्य है, पिता की आज्ञा शिरोधार्य करना।'

'मुझे विश्वास नहीं होता पिताजी, कि ये वाक्य आपके विशुद्ध अंतस्तल से निकले हैं...मैं नहीं समझ पा रहा हूं कि यह आज्ञा मेरे न्यायी पिताजी ने दी है, या मर्मव्यथा से व्यथित एवं पुत्र-प्रेम से उन्मत्त एक असहाय आत्मा ने।'

‘....................।’

‘आप चुप हैं पिताजी...। चुप हैं आप...। आज तक आपकी आज्ञा का पालन करता आया हूं मैं। अब ऐसा अवसर न दीजिये कि उस आज्ञा का उल्लंघन करूं। आपकी यही अभिलाषा है कि मैं कायर की भांति अपनी संस्कृति को दूषित करूं? आज्ञा दीजिये, मुझे आशीर्वाद दीजिये जिससे मैं अपना शौर्य प्रदर्शित कर पिता के उज्ज्वल यश की रक्षा कर सकूं। आज तक जिस पिता ने अपनी स्नेहमयी गोद में स्थान दिया—वीरत्व गाथायें सुना-सुनाकर हृदय में आत्मोत्सर्ग की अग्नि प्रज्ज्वलित की—उसी अग्नि पर पानी के छींटें मारकर आज उसे शांत कर देना चाहते हैं। देश परतन्त्र हो जाए और मुझ जैसा युवक उसे शांत चित्त से देखता रहे...यह देखने के पूर्व में मृत्यु की गोद में सो जाना पसंद करूंगा।’

‘.........’ द्रविड़राज ने सिर नहीं उठाया।

‘....।’ महापुजारी मौन रहे।

राजसभा ने सम्मिलित जयघोष किया।

महापुजारी को युवराज के निश्चय और दृढ़ता के समक्ष नत होना पड़ा।

‘वत्स...!’ बोले महापुजारी—‘जाओ, अपने कुल की लाज की रक्षा करो और समर में अपनी प्रतिभा प्रदर्शित कर अपने देश की आन रखो, परन्तु एक बात का ध्यान रखना, शिविर में बैठकर सेना का संचालन करना और युद्धभूमि में तब तक न जाना जब तक विशेष आवश्यकता न आ पड़े।’

युवराज ने श्रद्धापूर्वक महापुजारी के समक्ष सर झुकाया।

□ □

‘यह तुम क्या कह रहे हो चक्रवाल?’ किन्नरी निहारिका ने कहा—‘वास्तव में श्रीयुवराज रणक्षेत्र को प्रस्थान कर रहे हैं।’

‘हां...। आर्य सेना ने द्रविड़राज पर आक्रमण किया है। श्रीयुवराज द्रविड़राज सेना के अध्यक्ष चुने गये हैं।’

‘क्या श्रीसम्राट की सम्मति से...?’

‘प्रथम तो श्री सम्राट युवराज को रणक्षेत्र में नहीं जाने देना चाहते थे, परन्तु युवराज के हठ से बाध्य हो गये। समस्त सेना गुप्त मार्ग द्वारा सीमांत की ओर भेज दी गई हैं। श्रीयुवराज कल प्रातःकाल प्रस्थान करेंगे।’

‘क्या भवितव्य है चक्रवाल?’ किन्नरी खिन्न स्वर में बोली—‘जिस समय मैं शुद्ध मन से महामाया के समक्ष नृत्य करती हूं—तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो महामाया के मुख से भयंकर प्रलयाग्नि निकल रही है...यह देखो, मेरी दक्षिण भुजा फड़क उठी हे। अवश्य कुछ न कुछ अनिष्ट होने वाला है, चक्रवाल।’

‘इधर बहुत दिनों से मैं भी अत्यंत भयभीत हो रहा हूं—यह देखकर कि मैं जब अपने हृदय में सुखद गीत गाने की धारणा करता हूं, तो वीणा कर में लेते ही तारों से दुखद गीत की धारा प्रवाहित हो उठती है। मैं बहुत चाहता हूं कि ऐसा न हो, परन्तु महामाया की इच्छा...।’

‘कल वे प्रातःकाल चले जायेंगे—इधर बहुत दिनों से उनसे भेंट भी नहीं हुई है, हृदय अत्यंत व्यग्र है, चक्रवाल। हृदय में ऐसा मान होता है कि कदाचित् अब वे हमें सर्वदा के लिए त्याग कर जा रहे हैं...ऐसा प्रयत्न करो कि एक बार उनसे मिलन हो जाय, चक्रवाल...।’

‘यह कैसे हो सकता है निहारिका वे युद्धकार्य में व्यस्त होगे। कल प्रातःकाल मंदिर में उनके दर्शन कर लेना...।’

‘केवल दर्शन से काम नहीं चलेगा, चक्रवाल। हृदय-व्यथा अब मुख द्वारा बाहर आने की चेष्टा कर रही है। अब तक वाणी मूक थी, परन्तु अब उसमें वाक्शक्ति का संचार हो गया हे, वह युवराज के कर्ण-कुहरों में प्रवेश करने के लिए अधीर हो उठी है। अब तो तो दाहक अग्नि, जो असहनीय व्यथा अपने हृदय में दबाये बैठी हूं—उसे उन पर प्रकट कर देना चाहती हूं, चक्रवाल! तुम मेरा इतना उपकार कर दो...।’

किन्नरी के नेत्रों से मोती जैसे आंसू टपक पड़े।

'तुम्हें पीड़ा हो रही है?' चक्रवाल गंभीर स्वर में बोला—'विषय ज्वाला जला रही है...तुम्हारे...? मगर किन्नरी अपने देव पर अपनी व्यथा प्रकट कर उन्हें विचलित न कर देना...इस समय उनके सामने कर्तव्य का दुर्गम-पथ है...।'

'............।'

चुप रही किन्नरी। आंखों के आंसू पोंछ लिए उसने।

'मैं जा रहा हूं...।' बोला चक्रवाल—'अगर वे आ सके तो मैं उन्हें यहां तक अवश्य लाऊंगा।'

कहकर चला गया चक्रवाल।

किन्नरी पलंग पर गिरकर रोने लगी। रोते-रोते उसका आंचल भीग गया।

'ओह!'

आज उसे जो दुख और जो वेदना हो रही थी वह वर्णनातीत थी। आज उसके हृदय पर जो कुछ बीत रहा है, वह असह्य था।

'किन्नरी।' लौट आकर बोला चक्रवाल—'श्रीयुवराज इस समय अधिक व्यस्त हैं। कहा है उन्होंने कि तुम आधी रात को उद्यान से मिलना। वे भी कम दुखी नहीं हैं, निहारिका...।'

और चला गया चक्रवाल।

किन्नरी पलंग पर पड़ी हुई देर तक सिसकती रही। उसके नेत्रों के सामने युवराज की सौम्य प्रतिमा नृत्य करती रही।

अर्द्धरात्रि का आगमन जैसे किन्नरी निहारिका के लिए युवराज के आवाहन का शुभ संदेश था।

राजोद्यान में सन्नाटा छाया हुआ था। संगमरमर की चौकी पर बैठे हुए युवराज नारिकेल, किन्नरी की प्रतीक्षा कर रहे थे।

किन्नरी आई। युवराज को सम्मान प्रदर्शन किया उसने।

युवराज ने कोमल वाणी में कहा—'बैठो...।'

और किन्नरी आज बिना किसी हिचक के युवराज की बगल में बैठ गई।

'किन्नरी...!'

'देव...।'

दोनों का स्वर कांप रहा था।

'कष्ट के लिए क्षमा करना निहारिका...।'

'कष्ट किस बात का देव।'

निहारिका अपनी आंखों से निकल पड़नें के लिए मचलते आंसुओं को बड़े यत्न से रोके हुए थी।

'कल मैं रणक्षेत्र को जा रहा हूं। हृदय अत्यंत व्यथित था तुमसे मिलने की लालसा रोक न सका...।'

'यह श्रीयुवराज की अत्यंत कृपा है...मगर हम लोगों की क्या अवस्था होगी, श्रीयुवराज! आपका बिछोह हम लोग किस प्रकार सहन कर सकेंगे?'

किन्नरी का स्वर कम्पित था।

'मनुष्य को महामाया ने सहन-शक्ति प्रदान की है, किन्नरी...।'

'परन्तु मनुष्य का हृदय पाषाण-सा कठोर नहीं बनाया है, देव...।'

'यह क्या? तुम रो रही हो...तुम्हें पीड़ा पहुंच रही है कलामयी। मुझे कायर न बनाओ। इन अश्रु-बिन्दुओं को देखकर मेरी सारी शक्ति क्षीण हो जायेगी।'

'ये अश्रुकण ही तो शेष हैं, देव। और मेरे पास है ही क्या...? और सब तो आपके चरणों पर अर्पित कर चुकी हूं। विश्राम, सुख एवं हृदय सब कुछ तो आपने छीन लिया।'

‘ऐसा न कहो किन्नरी। तुम्हारे पास अगम ऐश्वर्य एवं अतुल सम्पदा का कोष है—मैं कितना दीन सकता हूं...तुम कलायमयी हो, देवी हो।’

‘आप तो मुझे निराश्रय छोड़े जा रहे हैं, श्रीयुवराज! आपकी अनुपस्थिति किस प्रकार सहन कर सकूंगी मैं...।’

युवराज कुछ न बोले। विछोह के स्मरणमात्र से उनके हृदय में संघर्ष-सा मच गया था।

राजोद्यान के कुमुदिनी-पुष्पों द्वारा आच्छादित सरोवर का जल, दोनों के परों के सन्निकट हिलोरे मार रहा था।

सौंदर्य और सुगंधित-युक्त कुमुदिनी के पुष्प, उन दोनों के मूक हृदय में मादकता कमी सृष्टि कर रहे थे।

चक्रवाल अपने प्रकोष्ठ में बैठा हुआ इस इस अर्ध-रात्रि की बेला में विहाग की करुण स्वर-रागिनी अलाप कर प्रकृति को विकल कर रहा था—

‘कुमुदिनी तू क्वारी केहि हेत।

बरबस वयसि वितावति बावरी। जलजहि वरि किन लेत?’

मदमत्त कुमुदिनी-पुष्पव वायु के वेग से हिलकर एक-दूसरे का चुम्बन कर रहे थे—मानो चक्रवाल का गायन सुनकर स्नेहपूर्वक एक-दूसरे से पूछ रहे हों कि वास्तव में जलज को वरण कर लेना चाहिये।

युवराज ने किन्नरी का सुकोमल कर अपने कर में ले लिया और अपनी अनामिका की उरत्नजड़ित मुद्रिका निकालकर किन्नरी की अनामिका में पहना दी।

बहुत काल तक दोनों निस्तब्ध रहे।

नीरव रजनी की स्थिरता के साथ-साथ उनके नेत्र भी स्थिर थे—एक-दूसरे की मुखाकृति पर।

□ □

□ □

प्रातःकाल महामाया के मंदिर में वृहद् पूजनोत्सव हुआ, क्योंकि आज युवराज के रणक्षेत्र में जाने के पहले, उनके मस्तक पर परम कल्याणकारी देवी के चरण का प्रसाद 'कुंकुम' लगाया जाने वाला था।

महापुजारी ने महामाया की विधिवत् आराधना की। किन्नरी ने धड़कते हुए हृदय से आरती का थाल उठाकर आरती की।

चक्रवाल ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से गाया—'वर दे, शत्रु विनासिनी वर दे।'

पूजन के पश्चात किन्नरी ने कुंकुम की थाली उठा ली और मंथर गति से वह युवराज की ओर बढ़ी।

चक्रवाल ने अपनी वीणा उठाई।

उसकी वाणी सिक्त थी, परन्तु उसने गाया—

लेकर कुंकुम थाली कर में,
चलो चलें हम एक नगर में,
जहां न दुःख का मान हो आली,
सुख की सरिता करे कलोल।
प्राण पपीहे पी पी बोल।।
बहुत ही करुणाजनक दृश्य था।

सबके हृदय पर आसीन, कर्तव्यशील युवराज की विदाई का वह दृश्य, अत्यंत हृदयद्रावक था।

सभी के नेत्रों से अश्रु-कण प्रवाहित हो रहे थे। परम धैर्यवान महापुजारी भी अपना मुख दूसरी ओर फेरकर बैठे हुए थे। कदाचित् उनके नेत्र-अश्रु का प्रबल वेग सम्भालने में असमर्थ हो रहे थे।

कुंकुम की थाली लेकर किन्नश्रीयुवराज के समक्ष आकर खड़ी हो गई।

उसके नेत्र आंसुओं से फट पड़ना चाहते थे। उसका स्वर फूट-फूटकर रो उठना चाहता था।

किन्नरी ने कम्पित करों से थोड़ा-सा कुंकुम उठाकर युवराज के मस्तक पर लगाया।

लगाते समय उसके सिक्त नेत्रों से मोतियों के सदृश अश्रुबिन्दु टपक कर युवराज के सामने धरती पर गिर पड़े।

एक क्षण के लिए युवराज प्रेम-विह्वल हो अस्थिर हो गये, परन्तु दूसरे ही क्षण गुरुजनों की उपस्थिति ने उनके ज्ञान-चक्षु खोल दिये।

किन्नरी लौट चली। उसके पग कांप रहे थे—उसका शरीर निष्प्रभ-सा हो रहा था।

चार पग आगे बढ़ते ही वह धड़ाम से भूमि पर गिर पड़ी।

कुंकुम इधर-उधर उड़कर भूमि का चुम्बन करने लगा।

'किन्नरी!' महापुजारी का तीव्र स्वर गूंज उठा।

किन्नरी ने अपने को संभाला।

शीघ्र ही पूजन समाप्त हुआ।

युवराज ने महापुजारी एवं द्रविड़राज के पैर छुए।

महापुजारी और द्रविड़राज ने उनकी मंगलकामना की।

जिस समय युवराज मंदिर से बाहर जा रहे थे, उन्होंने देखा कि एक कोने में किन्नरी निहारिका खड़ी है।

'किन्नरी...।' युवराज ने पुकारा।

किन्नरी उनके पास तक चली आई।

'व्यथित न हो, कलामयी। मैं शीघ्र ही विजय लाभ कर लौटूंगा...।' बोले युवराज।

‘.........।’ किन्नरी कुछ न बोली, केवल उसने अपने अंचल से थोड़ा-सा कुंकुम निकालकर पुनः उनके मस्तक पर लगा दिया।

‘मुझे भूलोगी तो नहीं, कलामयी?’

‘.......।’

‘बोलो किन्नरी।’

‘क्या बोलूं देव।’ कहकर वह जोरों से रो पड़ी।

पुनः अस्थिर होने के पूर्व ही युवराज आगे बढ़ गये।

चक्रवाल की आंखों में आंसू और हृदय में दारुण रोर उठ खड़ा हुआ था।

वाणी उसकी मूक थी—मगर हृदय व्यथित था।

और उसी समय युवराज नारिकेल गुप्त सुरंग द्वारा सीमांत की ओर रवाना हो गये।

द्रविड़ सेना कल ही जा चुकी थी।

ग्यारह

आर्य सम्राट के विशाल शिखिर के चतुर्दिक शस्त्रधारी सैनिक पहरा दे रहे थे।

युद्ध की समस्त तैयारियां गुप्तनीति से सम्पन्न की जा रही थीं, क्योंकि आर्य सम्राट तिग्मांशु को यह भली प्रकार ज्ञात था कि स्वाभिमानी द्रविड़राज बिना युद्ध के कभी अधीनता स्वीकार नहीं करेंगे।

यद्यपि उन्होंने अपने दूत को बहुत प्रकार से समझा-बुझाकर द्रविड़राज के पास भेजा था, फिर भी हृदय में यह शंका तो थी कि द्रविड़राज युगपाणि उनका प्रस्ताव स्वीकार करेंगे या नहीं।

आर्य-सम्राट तिग्मांशु अपने शिविर में नवीन सैन्य-संचालक पर्णिक एवं अन्य सैनिक पदाधिकारियों के साथ किसी गुप्त मंत्रणा में तल्लीन थे।

शिविर के द्वारदेश पर कई सैनिक पहरा दे रहे थे।

इस समय पर्णिक की वेशभूषा अनोखी थी। अब वह पहले का नग्न शरीर वाला किरातकुमार पर्णिक नहीं था। उसके शरीर पर उस सम बहुमूल्य वस्त्र चमक-दमक रहे थे, जिनकी आभा को उनके कण्ठ-प्रदेश में पड़े रत्नहार ने द्विगुणित कर रखा था।

अनेक प्रकार के नवीन अस्त्र-शस्त्र उसके शरीर पर सुशोभित हो रहे थे, जिससे उसकी मुखाकृति पर शौर्य की अविस्मरणीय आभा प्रस्फुटित हो रही थी।

इधर कुछ ही दिनों के सम्पर्क में आर्य-सम्राट को विश्वास हो गया कि किरात-समुदाय में रहने वाला यह वीर युवक अवश्य उच्च-कुलोत्पन्न है।

'यद्यपि हमने द्रविड़राज के पास अपना राजदूत भेज दिया है, परंतु अभी-अभी हमारे गुप्तचर यह समाचार लाये हैं कि द्रविड़राज की सेना यहां से योजन भर की दूरी पर आ गई है और वहीं उनका शिविर पड़ गया है। अब बिना युद्ध के हमारा कार्य सफलीभूत नहीं हो सकता...परन्तु आश्चर्य तो यह है कि हमारा राजदूत अभी तक लौटा क्यों नहीं?'

'आता ही होगा, श्रीमान्।' पर्णिक बोला—'विपक्षी की सेना आ गई है, हमारे लिए यह अत्यंत प्रसन्नता का विषय है। हमें युद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाना चाहिये।'

'उनकी सेना का संचालक कौन है...?' पूछा आर्य सम्राट ने।

'पता लगा है...।' एक सैनिक बोला—'कि अभी तक युद्ध क्षेत्र में संचालक आया नहीं है। प्रातःकाल तक आने की संभावना है।'

'कितनी सेना होगी?'

'आर्य सेना की आधी।'

‘इतनी छोटी सेना लेकर वे किस प्रकार हमारा सामना कर सकेंगे?’ आर्य सम्राट को आश्चर्य हुआ।

‘परन्तु श्रीमान्।’ सैनिक बोला—‘सुना है कि उसका संचालन करने के लिए राजकुल का कोई बहुत ही योग्य व्यक्ति आ रहा हे। ऐसी अवस्था में हमें उन्हें निर्बल समझ लेना भारी भूल होगी।’

‘आ गये राजदूत।’ द्रविड़राज के यहां से लौट हुए राजदूत को आता देखकर, आर्य सम्राट अतीव प्रसन्न हुए—‘क्या समाचार लाये हो? क्या कहा है उन्होंने?’

राजदूत ने सम्राट को अभिवादन किया—

तत्पश्चात् बोला—‘मेरा जाना निष्फल हुआ, श्रीमान्...। द्रविड़राज ने युद्ध की आकांक्षा प्रकट की है। साथ ही आपका और हमारे धर्म का...।’

‘हमारे धर्म का और मेरा उपहास किया होगा...क्यों?’

‘जी हां। सत्य है अनुमान आपका—कहा है उन्होंने कि आर्य सम्राट ने हम पर अन्यायपूर्ण आक्रमण करके अपने को हमारी दृष्टि में हेय एवं घृणित प्रमाणित किया है।’

‘यह कहा उन्होंने।’ दांत पीसने लगे आर्य सम्राट।

‘जिस समय मैं वहां से लौटने लगा, उस समय तक द्रविड़सेना युद्ध के लिए तनिक भी प्रस्तुत न थी। परन्तु आश्चर्य के साथ मैं देख रहा हूं कि मेरे यहां आने के बहुत पहले उनकी सेना आ पहुंची है...।’ बोला राजदूत।

‘क्या तुम्हारे वहां से चल देने के पश्चात् सेना ने प्रस्थान किया था?’

‘जी हां श्रीमान्...। पर्याप्त समय पश्चात्...।’

‘तो इतना शीघ्र उनके यहां आ पहुंचने का कारण...।’ आर्य सम्राट आश्चर्यचकित थे।

‘हो सकता है कि कोई गुप्त मार्ग हो, जिससे वे लोग यहां पहले आ पहुंचे हों...।’ पर्णिक ने कहा।

‘ठीक कहते हो संचालक तुम, यही कारण हो सकता है?’ आर्य सम्राट ने कहा—‘जहां तक मेरा अनुमान है, परसों प्रातःकाल तक उनकी सेना युद्ध के लिए पूर्णतया प्रस्तुत हो जायेगी। इसलिए कल प्रातःकाल तक तुम भी अपनी सेना का विधिवत् निरीक्षण कर लो, जिससे ठीक समय पर हम आक्रमण-प्रत्याक्रमण करने में समर्थ हो सकें।’

‘जो आज्ञा श्रीमान्।’ पर्णिक ने कहा।

आर्यशिविर से एक योजन दक्षिण की ओर द्रविड़सेना का शिविर था।

द्रविड़सेना यद्यपि आर्य सेना की संख्या से आधी थी, तथापि उसमें अतीव उत्साह था। कई वर्षों से विश्राम का उपभोग करते योद्धागण, इस युद्ध में भाग लेने के लिए अत्यंत लालायित एवं व्यग्र थे। समस्त द्रविड़सेना अपने धर्म एवं स्वदेश के रक्षार्थ अपना जीवन उत्सर्ग करने को प्रस्तुत थी।

आज मध्याह्न में युवराज भी गुप्त मार्ग द्वारा शिविर में आ पहुंचे थे—परन्तु उनका पदार्पण अत्यंत गुप्त रखा गया था।

यहां तक कि कुछ उच्च्य पदाधिकारी, कुछ गुप्तचरों तथा कुछ सैनिकों को छोड़कर, अन्य किसी भी द्रविड़ सैनिक को उनका आना ज्ञात न था।

चारों ओर यह बात प्रसारित कर दी गई थी कि किसी कारणवश युवराज युद्धक्षेत्र में नहीं आयेंगे, उनका स्थान कोई अन्य ग्रहण करेगा।

इस बात को गुप्त रखने करा तात्पर्य क्या था? यह राजनीति के ज्ञाता ही बता सकते हैं।

इस समय दो प्रहर रात्रि बीत चुकी थी।

भयानक वनस्थली, द्रविड़सेना के शिविर के चतुर्दिक भांय-भांय कर रही है। वन्य-पशुओं के भीषण गर्जन ने वातावरण को और भी भीषण बना दिया।

युवराज के शिविर में इस समय सेना के प्रमुख अधिकारियों के मध्य मंत्रणा हो रही है, मगर यह मंत्रणा भी युवराज के पदार्पण की ही तरह गुप्त है। इस मंत्रणा में केवल वही लोग सम्मिलित हैं, जो युवराज के आगमन के विषय में जानते हैं।

'वीरो...!' उच्चासन पर आसीन युवराज नारिकेल का स्वर उन वीरों में शक्ति का संचार करने वाला था—'यह तुमको ज्ञात है कि आज तक द्रविड़ों के सम्मान पर, द्रविड़ों की वीरता पर, तनिक भी कलंक नहीं लगने पाया है—और न तो लगने की तब तक आशा है, जब तक द्रविड़ साम्राज्य का एक भी योद्धा शेष है।'

युवराज रुके।

एक क्षण के लिए उनके नेत्र अपनी सेना के प्रमुख, वीरों के मुख पर जा पड़े, जो उनके सन्निकट की आसीन थे।

तत्पश्चात वे बोले—'आज आर्य-सम्राट ने हम पर अनाचारपूर्ण आक्रमण किया है तो हमारा यह परम कर्तव्य है कि अपनी सम्पूर्ण शक्ति का उपयोग कर एक अन्यायी को उसके अन्याय का समुचित दंड दें। आप विश्वास रखिये...यदि सब न्याय मार्ग पर हैं तो हमारी विजय महामाया की कृपा से निश्चित है। आर्य-सम्राट की सेना हमारी सेना से दुगुनी हे, उसके पास अस्त्र-अस्त्र का भी बाहुल्य है। ऐसी दशा में हमारा क्या कर्तव्य होना चाहिये, यही मंत्रणा करने हम यहां एकत्र हुए हैं।'

'श्रीयुवराज...।' धेनुक उठकर खड़ा हुआ। युवराज को अभिवादन करने के पश्चात् वह बोला—'आपका कथन असत्य नहीं है। आज हमारी कठिन परीक्षा का समय उपस्थित है। आज हम कायर बन गये तो हमारी स्वतंत्रता, एक विदेशी शासक के शासन में छिन्न-भिन्न हो जायेगी, परन्तु श्रीयुवराज

विश्वास रखें। द्रविड़ों ने अब तक सम्मान का जीवन व्यतीत किया है तो अब अपमान का जीवन नहीं व्यतीत कर सकते...हम मर मिटेंगे अपने स्वदेशाभिमान पर—अपनी स्वतंत्रता पर। श्रीयुवराज आज्ञा दें, हम सब आपके श्रीचरणों पर बलिदान होने को प्रस्तुत हैं।'

'तुम धन्यवाद के पात्र हो वीरो। द्रविड़ साम्राज्य को आज तुम पर भी भरोसा है—तुम्हीं उसके आधार-स्तम्भ हो...यह तो लगभग तुम सभी लोगों को ज्ञात होगा कि पिताजी की आज्ञानुसार मेरा रणभूमि में आना प्रच्छन्न रखा गया है। यहां आते समय मुझे यह भी आदेश दिया है कि मैं केवल शिविर में बैठकर युद्ध का संचालन करूं। रणक्षेत्र में तब तक न जाऊं, जब तक कि कोई आवश्यक कार्य न आ पड़े। ऐसी आज्ञा उन्होंने क्यों दी हे, यह तो वहीं जानें, परन्तु उनकी आज्ञा का पालन करना मेरा धर्म है।'

'रणक्षेत्र में आपके जीने की कोई आवश्यकता नहीं है, श्रीयुवराज। आप शिविर में बैठे-बैठे ही युद्ध का संचालन करें। युद्ध के समाचार हम प्रत्येक क्षण विश्वस्त सैनिकों द्वारा आपके पास भेजते रहेंगे, आप अपनी आज्ञा भी उन्हीं के द्वारा हमारे पास भेज दिया कीजियेगा। यदि कोई आवश्यक आज्ञा हमारे पास भेजनी हो तो उसके लिए जाम्बुक है ही...।' धेनुक ने कहा।

'ऐसी दशा में रणक्षेत्र के लिए एक दूसरे संचालक की आवश्यकता—आपमें से कौन-सा वीर अपने जीवन को उत्सर्ग करने हेतु प्रस्तुत है? कहकर युवराज ने चारों ओर दृष्टि निक्षेप कीं

उपस्थित वीरों ने धेनुक की ओर देखा।

धेनुक का प्रशस्त वक्षस्थल गर्व से फूल उठा। वह उठ खड़ा हुआ—

और बोला—'यह मेरे लिए परम सौभाग्य का विषय होगा, यदि श्रीयुवराज युद्ध-भूमि में सैन्य संचालन का भार मुझे प्रदान करें मैं प्राणपण से युवराज की प्रेषित आज्ञाओं का पालन करूंगा।'

'तुम उपयुक्त प्रत्याशी हो। मैं तुम्हें ही रणक्षेत्र का संचालक नियुक्त करता हूं।' युवराज ने कहा।

हर्षातिरेक से धेनुक चिल्ला उठा—'श्रीयुवराज की जय...।'

'कल प्रातःकाल अपनी सेना आक्रमण के लिए प्रस्तुत रखो...।' युवराज ने आज्ञा दी।

□ □

□ □

यह आज्ञा दी है....श्रीयुवराज ने यह आज्ञा दी है...धेनुक को महान आश्चर्य हुआ।

उस समय आर्य एवं द्रविड़ सेनायें मदोन्मत्त मेघ की तरह गर्जना करती हुई प्रबल वेग से एक-दूसरे पर आक्रमण कर रही थीं।

दोनों ओर के वीर एक-दूसरे पर विजय पाने की अभिलाषा से अपनी समस्त शक्ति को एकत्र कर युद्ध करने में तल्लीन थे।

उस समय रणक्षेत्र में जैसे रक्त की सरिता प्रवाहित हो रही थी। युद्ध भयानक बिन्दु पर पहुंच गया था।

युवराज की आज्ञानुसार धेनुक द्रविड़ सेना का संचालन कर रहा था।

वह महान वीर कृपाण भांजता हुआ जिधर भी निकल जाता उधर ही दस-बीस मस्तक धराशायी होते हुए दृष्टिगोचर होते।

द्रविड़ सेना सम्पूर्ण शक्ति से वीरता के साथ आर्य सेना का सामना कर रही थी।

युवराज के शिवर से आज्ञा पत्र लेकर एक सैनिक धेनुक के पास आया।

उस आज्ञा-पत्र में युवराज ने आदेश दिया था कि वह तुरंत ही अपने सेना के साथ दक्षिण-पश्चिम के मोर्चे पर चला जाए।

अपने उस स्थान पर जहां इस समय वह युद्ध कर रहा है, थोड़ी-सी सेना छोड़ दे।

यही था युवराज का आदेश और उसी ने धेनुक को आश्चर्यचकित कर दिया था।

वह समझ नहीं सका था कि युवराज के इस आदेश का तात्पर्य क्या है?

परन्तु युवराज के आदेशानुसार उसे कार्य करना ही था।

उसने तुरंत ही अपनी सेना एकत्र की और केवल थोड़े-से सैनिकों को उस स्थान पर छोड़ शेष को लेकर दक्षिण-पश्चिम के मोर्चे पर चला आया।

वहां पहुंचते ही वह आश्चर्यचकित रह गया, यह देखकर कि उस मोर्चे पर गुप्त रीति से आक्रमण करने के लिए आर्यों की एक बड़ी सेना चली आ रही है।

वह सोचने लगा—श्रीयुवराज की सैन्य संचालन की बुद्धि अद्भुत है। अवश्य ही उन्हें गुप्तचरों द्वारा इस आक्रमण का समाचार मिल गया होगा, तभी तो उन्होंने यह आदेश दिया।

दक्षिण-पश्चिम के मोर्च पर घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में आर्य सेना का संचालन स्वयं पर्णिक ने किया था।

परन्तु द्रविड़ सेना पूर्ण रूप से प्रस्तुत थी। प्राणों की आहुति देकर युद्ध करने वाले द्रविड़ वीरों एवं वीरवर धेनुक के प्रबल आक्रमण के समक्ष आर्य-सेना के पैर उखड़ गए।

रात्रि के आगमन के साथ ही युद्ध बंद हो गया।

आज की विजय का श्रेय द्रविड़ सेना को मिला।

□ □

□ □

‘आश्चर्य है श्रीमान्! महान आश्चर्य है।’ पर्णिक ने कहा—‘द्रविड़राज की इस छोटी-सी सेना ने आज आर्य-सेना को पराजित किया...यह कहानी-सी प्रतीत होती है, परंतु है वास्तव में सत्य।’

यही था युवराज का आदेश और उसी ने धेनुक को आश्चर्यचकित कर दिया था।

वह समझ नहीं सका था कि युवराज के इस आदेश का तात्पर्य क्या है?

परन्तु युवराज के आदेशानुसार उसे कार्य करना ही था।

उसने तुरंत ही अपनी सेना एकत्र की और केवल थोड़े-से सैनिकों को उस स्थान पर छोड़ शेष को लेकर दक्षिण-पश्चिम के मोर्चे पर चला आया।

वहां पहुंचते ही वह आश्चर्यचकित रह गया, यह देखकर कि उस मोर्चे पर गुप्त रीति से आक्रमण करने के लिए आर्यों की एक बड़ी सेना चली आ रही है।

वह सोचने लगा—श्रीयुवराज की सैन्य संचालन की बुद्धि अद्भुत है। अवश्य ही उन्हें गुप्तचरों द्वारा इस आक्रमण का समाचार मिल गया होगा, तभी तो उन्होंने यह आदेश दिया।

दक्षिण-पश्चिम के मोर्च पर घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में आर्य सेना का संचालन स्वयं पर्णिक ने किया था।

परन्तु द्रविड़ सेना पूर्ण रूप से प्रस्तुत थी। प्राणों की आहुति देकर युद्ध करने वाले द्रविड़ वीरों एवं वीरवर धेनुक के प्रबल आक्रमण के समक्ष आर्य-सेना के पैर उखड़ गए।

रात्रि के आगमन के साथ ही युद्ध बंद हो गया।

आज की विजय का श्रेय द्रविड़ सेना को मिला।

□ □

□ □

'आश्चर्य है श्रीमान्! महान आश्चर्य है।' पर्णिक ने कहा—'द्रविड़राज की इस छोटी-सी सेना ने आज आर्य-सेना को पराजित किया...यह कहानी-सी प्रतीत होती है, परंतु है वास्तव में सत्य।'

‘हमें परम कौतूहल हे कि हमारी विशाल सेना के समक्ष द्रविड़ राज की छोटी-सी सेना किस प्रकार टिक सकी, वह भी बिना किसी योग्य संचालक के।’ आर्य सम्राट तिग्मांशु बोले—‘उनका संचालक धेनुक है, परन्तु वह तो कोई बुद्धिमान संचालक ज्ञात नहीं होता...।’

‘श्रीमान सत्य कह रहे हैं...यह धेनुक की बुद्धि का कार्य नहीं है कि वह आर्य सेना का सामना कर सके, इस कार्य को कोई बहुत योग्य व्यक्ति संचालित कर रहा है।’

‘क्या तुम्हारा अनुमान है कि इस युद्ध में कोई अन्य व्यक्ति द्रविड़ सेना का संचालन कर रहा है जो कि रणभूमि में उपस्थित नहीं होता...?’ आर्य सम्राट ने पूछा।

‘श्रीमान का अनुमान सत्य है।’ पर्णिक ने कहा।

‘जी हां।’ एक दूसरा सैनिक बोला—‘यही बात सत्य प्रतीत होती है। आज हमने द्रविड़ सेना के शिविर से कई बार एक सैनिक को रणभूमि में धेनुक के पास आते-आते देखा था। इसके अतिरिक्त द्रविड़ शिविर से कई अन्य सैनिक भी धेनुक के पास आये और गये थे। अवश्य ही द्रविड़ सेना का वह योग्य संचालक किसी शिविर में बैठा युद्ध का संचालन कर रहा है।’

‘उनके दक्षिण पश्चिम भाग पर हमारा आक्रमण एकदम प्रछन्न रखा गया था, परन्तु न जाने कैसे उन्हें यह समाचार प्राप्त हो गया—अब हमें भी उनके शिविर के आस-पास अपने गुप्तचर नियुक्त कर देने चाहिए। सर्वप्रथम हमें द्रविड़ सेना के इस गुप्त संचालक का पता लगाना अत्यंत आवश्यक है, पश्चात् यह भी पता लगाना होगा कि वह गुप्त मार्ग कौन-सा है, जिससे द्रविड़ सेना यहां पहुंची है?’

पर्णिक ने कहा।

‘आज हमारी जैसी पराजय हुई है, वैसी कहीं किसी भी देश में नहीं हुई थी।’ आर्य सम्राट बोले।

□ □

अपने शिविर में बैठे हुए युवराज अग्रिम कार्यक्रम पर विचार करने में निमग्न थे शिविर के द्वार पर युवराज के विश्वस्त सैनिक पहरा दे रहे थे। रणक्षेत्र में रणचंडी नृत्य कर रही थी। युद्ध भयानक गति पर था।

'क्या है...?' युवराज ने पूछा उस सैनिक से जिसने अभी-अभी ही युद्ध-क्षेत्र से आकर युवराज को अभिवादन किया था।

'युद्ध भयंकर रुप धारण करता जा रहा है...।' सैनिक ने नतमस्तक होकर कहा।

'हमारी सेना का क्या समाचार है?'

प्राणपण से शत्रुओं का सामना कर रही है—धेनुक ने पूछा है कि सम्पूर्ण सेना उसी स्थान पर रहे या अन्य दिशा में भेज दी जाये?'

'किस भाग पर युद्ध हो रहा है...?'

'दक्षिण भाग पर।'

'अभी उसी स्थान पर सेना रहने दो।' युवराज ने कहा।

सैनिक अभिवादन कर चला गया।

'क्या है?' एक दूसरे गुप्तचर को प्रवेश करते हुए देखकर युवराज ने पूछा।

'पता लगा है कि उत्तरी भाग पर शत्रु सेना बहुत शीघ्र आक्रमण करने वाली है।' गुप्तचर ने कहा।

'बहुत शीघ्र?'

'जी हां। वहां का प्रबंध करना अत्यंत आवश्यक है। यही भाग हमारे लिए सबसे बड़े महत्त्व का है, क्योंकि हमारे गुप्त मार्ग का द्वार यहीं पर है।'

'मैं शीघ्र ही प्रबंध करता हूं...।' युवराज ने कहा—'बाहर से एक सैनिक बुलाओ।'

गुप्तचर बाहर जाकर एक सैनिक के साथ पुनः लौट आया, सैनिक ने युवराज को अभिवादन किया।

'देखा' युवराज ने कहा—'तुम अभी अश्वारुढ़ होकर धेनुक के पास जाओ और कहो कि आधी सेना दक्षिण भाग पर रख कर, शेष आधी ओर उत्तरी भाग पर भेज दे। बहुत ही गुप्तरीति से यह कार्य हो। सेना उत्तरी भाग की ओर अत्यंत शीघ्र एवं शांतिपूर्वक प्रस्थान करे और प्रच्छन्न रीति से जाकर गुप्त मार्ग पर छिपा रहे। कुछ लोग पहाड़ी गुफाओं एवं झाड़ियों का आश्रय लेकर उपयुक्त समय की प्रतीक्षा करें ताकि आक्रमणकारियों को यह ज्ञात हो जाये कि वह स्थान निर्जन एवं जनशून्य है। जब शत्रु सेना घाटी में से आने लगे तो उन पर तीरों को अनवरत वर्षा कर उसे धाराशायी बना दें, परन्तु शब्द जरा भी न हो और न ही शत्रुगण यही जान सकें कि यह तीरों की वर्षा किधर से हो रही है—नहीं तो हमारा गुप्त मार्ग शत्रुओं पर प्रकट हो जायेगा।'

'पराजय...! पराजय...।' पर्णिक हाथ मल रहा था जोरों से एवं आर्य सम्राट आश्चर्यचकित होकर चिंतामग्न बैठे थे...सब ओर पराजय ही पराजय, आज उत्तरी भाग पर हमें जैसी लज्जाजनक पराजय उठानी पड़ी—वह वर्णनातीत है। हमारी सेना जिस समय वहां पहुंची उस समय उस मार्ग पर एकदम नीरवता छाई हुई थी। ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह स्थान जन-शून्य है, परंतु थोड़ा और आगे बढ़ते ही हमारी सेना पर तीरों की भयंकर वर्षा होने लगी। कुछ पता ही न लगता था कि आक्रमणकारी किस ओर हैं।

'अद्भुत है द्रविड़ सेना का वह गुप्त संचालक...।' आर्य सम्राट विस्फारित नेत्रों से चिंतातुर स्वर में बोला।

बारह

अपने शिविर में बैठे थे युवराज नारिकेल और उनके सामने नतमस्तक खड़ा था सेनानायक धेनुक ।

'मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं, वीर धेनुक...।' युवराज बोले—'मेरी आज्ञानुसार युद्धभूमि में अत्युत्तम सैन्य-संचालन का परिचय दिया है तुमने। आर्य-सम्राट को आज मालूम हो गया होगा कि द्रविड़ों में रण-कौशल का अभाव नहीं है।'

'यह सब आपके योग्य-संचालन का परिणाम है श्रीयुवराज नहीं तो मुझमें इतनी योग्यता कहां।'

धेनुक ने नम्रतापूर्वक युवराज नारिकेल के सामने सर झुकाया ओर तब अपनी खुली हुई हथेली युवराज के आगे बढ़ा दी।

चौंक पड़े युवराज।

धेनुक की हथेली पर पड़े हुए मूल्यवान रत्नहार को देखकर।

'क्या है यह...?' पूछा युवराज ने।

'विद्रोही किरात नायक के गले का रत्नहार है यह—आज युद्ध करते समय उसके गले से यह रत्नहार टूटकर जमीन पर गिर पड़ा था—मैंने देखा तो उसे उठा लिया—आश्चर्यजनक है यह रत्नहार श्रीयुवराज।' धेनुक ने कहा।

'किरात नायक का रत्नहार आश्चर्य...!' युवराज रत्नहार हाथ में लेकर ध्यानपूर्वक देखने लगे—'परन्तु इस पर यह देखो।'

'मैं सब देख चुका हूं युवराज।'

'देख चुके हो तुम...? तुमने देखा कि इस रत्नहार के प्रत्येक मणि पर का वह चिन्ह...द्रविड़ कुल का पवित्र चिन्ह है।'

सबने आश्चर्य-विस्फारित नेत्रों से देखा कि उस रत्नहार के प्रत्येक मणि पर द्रविड़ कुल की वंश परम्परा का चिन्ह अंकित है—वह चिन्ह जो प्रत्येक द्रविड़ के लिए पूजनीय है।

'यह शत्रु के हाथ कैसे आया...?' युवराज को महान् आश्चर्य हो रहा था—'यह द्रविड़राज के परम पवित्र पूजनीय रत्नहार है...देखो! कितना

मूल्यवान है यह...चोर है वह किरातों का दुष्ट नायक उसने द्रविड़ कुल के पवित्र रत्नहार की चोरी की है...।'

'धेनुक...!'

'आज्ञा श्रीयुवराज।'

'देखते हो न। आज तुम द्रविड़कुल की लाज लौटा लाये—पिताजी इस रत्नहार को देखकर बहुत प्रसन्न होंगे...।'

'मेरा विचार है कि यह रत्नहार श्रीसम्राट के पास अभी भेज दिया जाये...।' धेनुक बोला—'शायद इसमें कोई गुप्त रहस्य हो।'

'ठीक कहते हो तुम। मैं अभी एक सैनिक को यह रत्नहार और पत्र देकर गुप्त सुरंग द्वारा पिताजी के पास भेज देता हूं। तुम एक विश्वस्त सैनिक को मेरे पास बुलाओ।' युवराज ने कहा।

और वे भोजपत्र पर द्रविड़राज को एक पत्र लिखने लगे।

धेनुक बाहर जाकर एक सैनिक को बुला लाया।

'देखो...!' युवराज उस सैनिक को पत्र देकर बोले—'तुम गुप्त मार्ग द्वारा अत्यंत शीघ्र पिताजी के पास जाओ। उन्हें मेरा यह पत्र और पवित्र रत्नहार दे देना और यहां का सब समाचार विस्तारपूर्वक निवेदन कर देना...कोई आवश्यकीय समाचार हो तो शीघ्र मेरे पास लेकर आना...उनसे यह भी कह देना कि मैं चोर को समुचित दण्ड देने की व्यवस्था कर रहा हूं।'

सैनिक ने वह पत्र और रत्नहार यत्नपूर्वक ले लिया, पुनः युवराज को सम्मान प्रदर्शन करने के पश्चात् वह शिविर के बाहर निकल गया और पैदल ही उत्तर की ओर चल पड़ा।

भयानक वन के मध्य से वह सैनिक चला जा रहा था। परन्तु उसे इस बात का तनिक भी पता न था कि एक गुंजान झाड़ी से निकलकर कोई मनुष्य गुप्तरूप से उसका पीछा कर रहा है।

वह मनुष्य अतीव सावधानी से उस सैनिक का अनुसरण कर रहा था। सैनिक पूर्ववत् असावधानी से चला जा रहा था।

उसे इस बात की तनिक भी आशंका न थी कि इस वन्य प्रदेश में कोई मनुष्य उसका पीछा कर सकता है।

एक स्थान पर, जहां हिमराज का शिखर कुछ ऊँचा था, जहां गुंजान झाड़ियों ने अपनी विकराल भयंकरता प्रसारित कर रखी थी, जहां जाते सहज भयानकता का भान हो जाता था—वह सैनिक आकर वहां रुका।

यही गुप्तमार्ग का प्रवेश द्वार था।

सैनिक ने एक बार सावधानीपूर्वक अपने चारों ओर देखा परन्तु पीछा करने वाले मनुष्य को वह देख न सका।

अब उसे विश्वास हो गया कि उसका यहां आना किसी ने नहीं देखा है, तो वह एक गुंजान झाड़ी में घुसकर विलुप्त हो गया।

उसका पीछा करने वाला मनुष्य बहुत देर तक निस्तब्ध खड़ा उसकी प्रतीक्षा करता रहा, कदाचित् उसे आशा थी कि वह सैनिक शीघ्र ही लौट आयेगा।

परन्तु जब पर्याप्त समय व्यतीत हो गया और वह सैनिक नहीं लौटा तो वह धीरे-धीरे उस गुंजान झाड़ी की ओर बढ़ने लगा, जिसमें वह सैनिक लुप्त हुआ था।

झाड़ी के पास पहुंचकर उसने आहट ली, परन्तु सब ओर सन्नाटा पाकर उसका साहस बढ़ा।

वह भी उस गुंजान झाड़ी में प्रवेश कर गया, परन्तु दूसरे ही क्षण वह चौक पड़ा, उस गुंजान झाड़ी की क्रोड़ में अवस्थित एक कंदरा का प्रवेश द्वार देखकर।

'तो यही है वह गुप्तमार्ग जिससे द्रविड़राज की सेना आई थी...।' वह स्वतः ही बड़बड़ा उठा और पुनः झाड़ी के बारह आकर तीव्र वेग से उस ओर चल पड़ा जिधर आर्य सम्राट की अपार सेना का विशाल शिविर था।

वह था आर्य सम्राट का गुप्तचर।

अर्द्धरात्रि की बेलों यह भयानक वन्य-प्रदेश पशुओं के निनाद से परिपूरित था, परन्तु आर्य सेना शिविरों में पड़ी थी अति शांति के साथ।

समग्र आर्य शिविर में सन्नाटा छाया हुआ था।

आर्य सम्राट के शिविर के द्वार देश पर कई सैनिक पहरा दे रहे थे। आर्य सम्राट ने पर्णिक के चेहरे पर आश्चर्यपूर्ण दृष्टि डाली। बोलो—'तो तुम्हारा वह रत्नहार क्या हुआ?'

'पता नहीं श्रीमान! क्या हुआ वह।' पर्णिक बोला—'शायद युद्ध करते समय कहीं गिर गया है।'

'तुम्हें उसके खो जाने का पता कब लगा?'

'अभी श्रीमान...अभी।'

'परन्तु इस अंधकारपूर्ण रात्रि में उसकी खोज भी तो नहीं की जा सकती...।' आर्य सम्राट चिंतायुक्त स्वर में बोले।

'मैं खोज कर चुका हूं श्रीमान्। कहीं पता न लगा—अपने सैनिकों से पूछ चुका हूं...सम्भवतः वह रत्नहार शत्रुओं के हाथ पड़ गया है...।' पर्णिक ने कहा।

'सेनाध्यक्ष पर्णिक! तुम इस समय जाकर विश्राम करो। प्रातःकाल इस पर विचार किया जायेगा।'

और पर्णिक म्लान मुखाकृति लिए शिविर के बाहर चला गया।

आर्य सम्राट भी विश्राम की तैयारी करने लगे कि तभी एक सैनिक आ पहुंचा।

‘क्या है...?’ पूछा आर्य सम्राट ने।

सैनिक बोला—‘गुप्तचर द्वार पर उपस्थित है। कहता है कार्य अत्यंत आवश्यक है, वह इसी समय श्रीमान् का दर्शनाभिलाषी है।’

आर्य सम्राट आश्चर्य से उठ बैठे—‘उपस्थित करो उसे।’ उन्होंने आज्ञा दी।

सैनिक चला गया।

दूसरे ही क्षण गुप्तचर ने उस शिविर में प्रवेश कर आर्य सम्राट को अभिवादन किया—‘कार्य अत्यंत आवश्यक है, श्रीमान्।’

‘क्या है...है क्या गुप्तचर?’

‘मैंने गुप्त मार्ग का पता लगा लिया है, श्रीमान्...।

गुप्तचर ने बहुत धीरे से कहा।

‘कौन-सा गुप्त मार्ग?’

‘द्रविड़ सेना के आने का गुप्त मार्ग। बहुत प्रच्छन्न है वह, परन्तु मैंने खोज ही निकाला। श्रीमान् को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि वह गुप्तमार्गी गुंजान झाड़ियों से आच्छादित एक कंदरा के रूप में है, जहां मानवी नेत्र कदाचित् ही पहुंच सकें...।’

‘कन्दरा के रूप में।’

‘जी हां श्रीमान्।’

‘तब वह गुप्तमार्ग नहीं है। गुप्त मार्ग पर उनके सैनिकों का पहरा होना चाहिए।’ आर्य सम्राट ने कहा।

‘नहीं श्रीमान्! वहां पहरे का चिन्ह तक नहीं हैं वहां पहरेदार इसलिए नहीं रखे गये हैं कि पहरा रहने का सहज ही लोगों को अनुमान हो जायेगा कि वहां पर कोई गुप्तमार्ग है...मैं निश्चित रूप से कह सकता हूं श्रीमान्। कि वही गुप्तमार्ग है। अभी-अभी मैं देखकर आ रहा हूं कि द्रविड़-शिविर का

एक सैनिक संदेश लेकर उसी मार्ग द्वारा राजनगर पुष्पपुर की ओर गया है...।'

'तुम्हारा क्या विचार है?'

'मेरा विचार है श्रीमान् कि आप इसी समय चलकर उस कंदरा के द्वार का कुछ दूर तक निरीक्षण करें। तब यदि आप आवश्यक समझें तो अपनी कुछ सेना इसी गुप्तमार्ग द्वारा राजनगर पुष्पपुर की ओर भेद दें। ऐसा करने से हमारी विजय निश्चित है।'

'तुम्हारा कथन उचित है, चलो, मैं अभी चलता हूं...।'

आर्य सम्राट शिविर से बाहर निकले और बिना किसी से कुछ कहे, गुप्तचर के साथ पैदल ही चल पड़े।

जंगली मार्ग से होते हुए दोनों पहुंच गये उस स्थान पर।

आश्चर्यचकित हो उठे आर्य सम्राट उस गुप्त कंदरा को देखकर।

बोले—'यह कन्दरा अवश्य है, गुप्तचर। मगर मानवी हाथों द्वारा इसका निर्माण बहुत विकट कार्य है।'

'जी हां श्रीमान्।'

गुप्तचर आगे-आगे चल रहा था। उसके हाथों में एक छोटा-सा प्रकाश-पुंज था।

एक स्थान पर आते ही दोनों ठमककर खड़े हो गये, क्योंकि उनके कानों में अभी-अभी ही किसी का कठोर गर्जन सुनाई पड़ा था।

'ठहरो!'

'क्या बात है गुप्तचर...।' आर्य सम्राट ने शंकित स्वर में धीरे से पूछा।

फिर ध्यानपूर्वक उन्होंने अपने चारों ओर देखा। कोई नहीं था वहां।

'शायद शत्रुओं को हमारी भनक लग गई है?' गुप्तचर ने कहा।

‘कोई दिखाई तो नहीं पड़ा था।’

‘श्रीमान् को विदित हो कि इन द्रविड़ों का कला-कौशल अपूर्व है...यह कन्दरा भी रहस्यमयी मालूम पड़ती है।’

बहुत देर तक दोनों चुपचाप खड़े रहे।

जब कहीं किसी मनुष्य की आहट न मिली तो वे पुनः धीरे-धीरे आगे बढ़े।

‘ठहरो।’

गंभीरता लिये हुए तीव्र स्तर से पुनः सारी कन्दरा गूंज उठी।

आर्य सम्राट और गुप्तचर के शरीर सिर उठे।

न जाने कहां से धड़-धड़ शब्द हुआ और सुरंग की दीवार की एक चट्टान भयंकर आवाज के साथ एक ओर को सरक गई।

और कंदरा में हल्का प्रकाश फैल गया।

वहां पर खड़े थे युवराज नारिकेल, धेनुक के साथ।

आर्य सम्राट को बहुत कष्ट हुआ होगा, यहां पधारने में।’ धेनुक व्यंग्यात्मक स्वर में बोला—‘अपने गुप्तचर से आपके यहां पधारने का समाचार पाकर मैं श्रीमान् का स्वागत करने आया हूं।’

‘कौन हो तुम?’ आर्य सम्राट ने उपेक्षापूर्ण स्वर में पूछा।

‘क्षुद्र नायक खड़ा है आपके सामने।’

‘नायक?’

आर्य सम्राट ने ध्यानपूर्वक उस विचित्र नायक की ओर देखा, जिसके अद्भुत बुद्धि चातुर्य तथा राजनीतिक कुशलता ने स्वयं उनकी बुद्धि और राजनीति कुण्ठित कर दी थी।

नायक आपसे यह जानना चाहता है आर्य सम्राट! कि आपने इस रहस्यमयी कन्दरा में आने का दुस्साहस क्यों किया...?' धेनुक ने युवराज की आज्ञा पाकर आर्य सम्राट से पूछा।

'दुष्कर ही के लिए तो दुस्साहस किया जाता है।'

'धन्यवाद।' युवराज बोले—'परन्तु आपका यह दुस्साहस सराहनीय नहीं।'

'तुम्हारा मतलब?' युवराज की ओर अभिमुख हो सम्राट ने पूछा।

आर्य सम्राट युवराज से सम्मानपूर्वक बातचीत नहीं कर रहे थे, क्योंकि उन्होंने युवराज को सेनापति मात्र समझ रखा था, जम्बूद्वीप का युवराज नहीं।

'मेरा मतलब यह है श्रीमान् कि यदि आपको यह मालूम होता कि यह कंदरा बहुत भयानक है, यदि आप यह जानते होते कि यहां की चप्पा-चप्पा भूमि रहस्यमयी कलाओं से युक्त है—तो कदाचित् आप यहां पधारने का कष्ट न करते...।'

'अभी तुम्हें आर्य सम्राट की निर्भयता का पता नहीं है, नायक'

'जान चुका हूं श्रीमान्। आर्य सम्राट का शौर्य दो युद्धों से प्रकाश में आ गया है।'

युवराज का व्यंग्य सुनकर आर्य सम्राट हतप्रभ से हो गये।

'जब तक वर्तमान युद्ध का अंत नहीं हो जाता, तब तक श्रीमान् अपने को बंदी समझें...।' युवराज संयत वाणी में बोले।

'बंदी!'

क्रोध से चिल्ला उठे आर्य सम्राट।

'हां।'

'मुझे बंदी बनाओगे? इतना साहस है तुममें। पहले तुमने मेरा अपमान किया, अब बंदी बनाना चाहते हो? एक क्षुद्र सेना नायक होकर एक सम्राट की अवज्ञा करना महान अपराध है।'

'जिसे आप केवल क्षुद्र सेनानायक समझ रहे हैं...।' धेनुक बोला—'वे हैं जम्बूद्वीप के भावी सम्राट स्वयं युवराज नारिकेल...?'

आर्य सम्राट मानो आकाश से गिरे, क्योंकि युवराज की वीरता की कहानी वे मध्य अशांत महाद्वीप में ही सुन चुके हैं।

युवराज ने बगल में हाथ बढ़ाया और न जाने क्या किया कि कंदरा के सामने वाली दीवार से एक बड़ी-सी चट्टान आकर बीच सुरंग में रुक गई। सुरंग का मार्ग बंद हो गया।

जब आर्य सम्राट चैतन्य हुए तो उन्होंने देखा कि युवराज और धेनुक जा चुके थे—और वह द्वार भी लुप्त हो गया था, जहां वे दोनों खड़े थे।

□ □

□ □

रात्रिपर्यन्त पर्णिक विचारों में तल्लीन रहा।

प्रातःकाल वह एक सघन वृक्ष के नीचे बैठकर प्रातःकालीन वायु का सेवन कर रहा था।

तभी एक आर्य सैनिक ने आकर निवेदन किया—'सम्राट का कहीं पता नहीं। अर्धरात्रि से ही वे लुप्त हैं। प्रहरी कह रहे हैं कि उन्होंने अर्द्धरात्रि से ही वे लुप्त हैं प्रहरी कह रहे हैं कि उन्होंने लगभग अर्द्धरात्रि को एक गुप्तचर के साथ, पैदल ही दक्षिण की ओर उन्हें जाते हुए देखा था।'

पर्णिक पर जैसे वज्रपात हुआ, यह अघटित घटना सुनकर। कल उसका रत्नहार गया और आज सम्राट भी।

'तुमने आस-पास खोज की?' पूछा पर्णिक ने।

‘जी हां, गुप्तचरों ने आसपास का सारा वन्य-प्रदेश छान डाला, परन्तु निराशा ही हाथ लगी।’

‘अभी तक इस बात को कितने लोग जानते हैं?’

‘केवल कुछ लोग...।’ सैनिक ने उत्तर दिया।

‘देखो यह बात फैलने न पाये, नहीं तो आर्य सेना शिथिल पड़ जायेगी। तुम युद्ध की तैयारी करो और दुर्मुख को शीघ्र ही मेरे पास भेज दो।’ पर्णिक ने कहा।

सैनिक चला गया।

पर्णिक व्यग्रतापूर्वक उसी सघन वृक्ष के नीचे टहलता रहा।

दुर्मुख किरात-नायक पर्णिक का मित्र और उसका प्रमुख सहायक था। उसने पर्णिक की म्लान मुखाकृति को देखकर व्यग्रता से पूछा—

‘क्या है पर्णिक? क्या बात है?’

‘देखो।’ पर्णिक ने कहा—‘युद्ध का परिणाम भयंकर होता जा रहा है। माताजी से मैं स्वदेश रक्षा की प्रतिज्ञा करके आया हूं, परन्तु यहां आकर आर्य सम्राट का सहायक बन बैठा। कितनी बड़ी त्रुटि हुई मुझसे। कल शत्रु सेना के हाथ मेरे गले का वह पवित्र रत्नहार पड़ गया, आज आर्य सम्राट तिग्मांशु न जाने कहां लुप्त हो गये। मुझे तो ऐसा लगता है कि शीघ्र ही कोई भयंकर घटना होने वाली है।’

‘आर्य सम्राट की सहायता तुम्हें नहीं करनी चाहिये थी नायक’

‘कैसे न करता, दुर्मुख। अपने पास याचनार्थ आये हुए भिखारी का तिरस्कार कैसे करता। आर्य सम्राट ने मेरी माता पर आक्षेप किया था— भला कैसे सहन कर सकता था यह...। केवल माताजी के सम्मान की रक्षार्थ मैंने आर्य सम्राट को सहायता देना स्वीकार किया था।’

‘तो अब मेरे लिये क्या आज्ञा है?’

'तुम अभी इसी समय माताजी के पास जाओ। केवल तीन-चार घड़ी का मार्ग है। उनसे मेरा प्रणाम कहकर यहां का समाचार निवेदन कर देना कि वह पवित्र रत्नहार शत्रु सेना के हाथ पड़ गया है। उनसे यह भी पूछ लेना कि अब मेरे लिए क्या आज्ञा है? यथाशक्ति, अतिशीघ्र आने का प्रयत्न करना। मेरे हृदय में जाने क्यों झंझावात-सा उठ खड़ा हुआ है।'

दुर्मुख शीघ्र ही अश्वारुढ़ होकर चल पड़ा।

उस समय सूर्य की सुनहरी किरणें वृक्षों की चोटियों पर नृत्य करने लगी थीं।

तेरह

विद्युत-रेखा से आलोकित आलोक में मेघाच्छन्न नभ मण्डल ने अपना कृष्णकाय मुख देखा।

चमचम चमकती हुई मणिमाला जैसी तारकावली ने श्यामल मेघों के कोड़ में अपना प्रोज्वल मुख छिपा लिया।

प्रबल वेगवान समीरण, कर्कश ध्वनि करता हुआ उस समय पुष्पपुर नगरी पर हाहाकार करने लगा।

मानवी संसार इस प्रबल झंझावात से त्रस्त एवं व्यग्र होकर इतस्ततः शरण खोजने लगा। मेघावरण से छन-छनकर आती हुई मुक्ता सदृश जल-बिन्दुएं अबाध गति से भूमि का सिंचन करने लगीं।

वृक्ष अपनी शाखा-प्रशाखा समेत झूमने लगे। हिमराज के सर्वोच्च शिखर पर से आता हुआ प्रबलानिल, मानो मृत्यु का संदेश लेकर द्वार-द्वार घूमने लगा।

समग्र पुष्पपुर नगरी पर भयंकर वर्षा हो रही थी।

घनघोर एवं पिशाचाकार मेघों के प्रलयंकारी गर्जन से राजप्रकोष्ठ की दीवारें प्रकम्पित हो रही थीं।

महामाया मंदिर के स्वर्ण-निर्मित घंटे वायु का प्रबल वेग पाकर भयंकर गति से हिल पड़ते थे और उनके द्वारा उत्पन्न टन्न-टन्न शब्द उस विकट रात्रि में सुदूर तक प्रसारित होकर एक भयंकर वातावरण की सृष्टि कर देते थे।

अर्धरात्रि की ऐसी भयानक स्थिति में जबकि पुष्पपुर राजप्रकोष्ठ के सभी लोग निद्राभिभूत थे एवं महामाया के सुविशाल मंदिर में सघन अंधकार आच्छादित था, चक्रवाल के प्रकोष्ठ की खिड़की खुली थी और उस पर बैठा हुआ महान कलाकार अपनी कला में तन्मय था।

उसके प्रकोष्ठ का द्वार खुला था, जिसमें वर्षा के जलकण भीतर प्रवेश कर भूमि पर बिछे कालीन को भिगो रहे थे, परन्तु उसे मानो किसी बात की चिंता ही न थी।

उसके नेत्रद्वय खिड़की के वर्हिप्रदेश के घनीभूत अंधकार में न जाने किसे ढूंढने का प्रयत्न कर रहे थे, परन्तु कभी-कभी विद्युत-प्रकाश में नन्हीं-नन्हीं जल-बिन्दुओं के गिरने से उत्पन्न बुलबुलों के अतिरिक्त कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता था।

केवल उसकी मधुर स्वर लहरी वर्षा के घोर रव में मिलकर विलीन हुई जा रही थी।

'घन उमड़-घुमड़कर बरस रहे, लोचन उन बिन तरस रहे।'

चक्रवाल जाने कब तक अपनी स्वर साधना में तल्लीन रहता, यदि उसे दीपशिक्षा के कम्पित आलोक में प्रकोष्ठ के द्वार पर किसी की छाया न दृष्टिगोर हुई होती।

चलवाल का हृदय तीव्र वेग से सिर उठा—अश्रु-सिक्त किन्नरी निहारिका को द्वार पर खड़ी देखकर।

किन्नरी प्रकोष्ठ के भीतर चली आई।

चक्रवाल ने देखा उसका सारा शरीर भीगा हुआ था और वस्त्रों से टप-टप जल चू रहा था।

'किन्नरी...!' शंकित स्वर में बोला चक्रवाल—'कहां से आ रही हो तुम...?'

'राजोद्यान से आ रही हूं...।' किन्नरी ने केवल इतना ही कहा।

चक्रवाल तड़प उड़ा—'हे महामाया...। तुम क्या करने गई थीं वहां? ऐसी विकट रात्रि में, ऐसी भयंकर वर्षा में, वायु की हाहाकारमय सनसनाहट में, तुम राजोद्योन में गई थी? क्यों...? किसलिए? बोलो।'

'वर्षा के दुस्सह वातावरण एवं तुम्हारे गायन से उत्पन्न असह्य वेदना से व्यथित होकर, मैंने सोचा चलकर राजोद्यान में ही हृदय की दारुण ज्वाला शांत करूं।'

'वहां कैसे शांत हो सकती थी तुम्हारी दारुण ज्वाला...? कौन बैठा था वहां, जो तुम्हारी कला की श्रेष्ठता में तन्मय हो तुम्हारा गुणगान करता और तुम भी उसके मधुर वार्तालाप से प्रभावित होकर अपने हृदय की सारी वेदना चारुचन्द्रिका के कल्लोल में विलीन कर देतीं...कौन था वहां, बोलो।'

'वहां उनकी मधुर स्मृति विराजमान है...।' किन्नरी ने करुण दृष्टि से देखा चक्रवाल की ओर—'वहां के पल्लवों में, वहां के कण-कण में उनकी मधुर ध्वनि गुंजरित होती रहती है। जब मैं वहां जाती हूं, मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे वृक्षों की शाखायें, सरोवर की कुमुदिनियां एवं भूमि के रजकण सब उन्हें के स्वर में मेरा आह्वान कर रहे हों, कलामयी। आओ न! चक्रवाल! जब-जब मैं वहां जाती हूं, उस स्थान का मंदिर वातावरण मुझे विकल, क्षुब्ध एवं द्रवित कर देता है।'

'श्रीयुवराज के लिए इतना व्यथित होना उचित नहीं, किन्नरी। अपनी अवस्था पर ध्यान दो। देखो जब से वे गये हैं, तुम्हारा शरीर सूखकर कांटा हो गया—तुम्हारे, नेत्र अहर्निश अश्रु वर्षा करते-करते रक्तवर्ण हो उठे हैं—

तुम्हारी देदीप्यमान मुखश्री से हाहाकारमयी करुणा का स्रोत प्रवाहित होता रहता है। अपने ही संयत करो, निहारिका।'

'व्यर्थ है चक्रवाल। हृदय की अगम सुख-शांति एवं नेत्रों का समस्त आलोक तो उनके साथ चला गया है।'

'तुम्हें हो क्या गया है किन्नरी...? क्या अब फिर लौटेंगे नहीं वे? तुम किन प्रलयंकर विचारों में विदग्ध हो रही हो निहारिका?'

'नहीं लौटेंगे, चक्रवाल। मेरा अंतस्थल कहता है कि अब वे नहीं लौटेंगे, मुझसे छल करके कहीं दूर चल देंगे...मैं भयानक अनल में जली जा रही हूं —यदि एक बार उनके दर्शन कर पाती?' निहारिका ने कहा।

चक्रवाल ने देखा, निहारिका के नेत्रों में उन्माद के लक्षण स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

'तुम्हारी दशा शोचनीय है, तुम अपने प्रकोष्ठ में जाकर विश्राम करो।'

चक्रवाल ने किन्नरी का हाथ पकड़ लिया, परन्तु वह चौंक पड़ा—'यह क्या...? यह क्या अनर्थ कर रही हो, निहारिका तुम...तुम्हारा शरीर इतना तप्त है...और तुम यहां भीगी हुई खड़ी हो। जाओ किन्नरी तुम्हें विश्राम की आवश्यकता है।'

'रहने दो। मुझ व्यथित को यहीं, अपने प्रकोष्ठ के द्वार पर ही खड़ी रहने दो...।' निहारिका बोली—'और तुम गाओ। कोई दुःखद गीत। गाकर यावत जगत को विह्वल कर दो, मेरे सन्तप्त हृदय को इतना सन्तप्त कर दो...कि में प्राणहीन हो जाऊं।'

चक्रवाल ने गंभीरता को समझा। समझकर उसने वीणा उठा ली। वीणा मधुर स्वर में गुंजरित हो उठी। उसका सिक्त स्वर धीमी गति से प्रवाहित हो उठा—

व्यथित बाला के शून्य द्वार,
आती समझाने मृदु बयान,

करती-बिखरा तन पर फुहार,
सखि, वे दिन कितने सरस रहे,
ये लोचन उन बिन तरस रहे।।

उसी समय मृदु बयान का एक झोंका आया जो प्रकोष्ठ के द्वार पर खड़ी हुई निहारिका के उज्जवल तन पर फुहारों की वर्षा कर गया। मानो उसे संकेत कर रही हो—'सखि! वे दिन कितने सरस रहे...।'

एक तीव्र कम्पन स्वर के साथ चक्रवाल की वीणा रुक गई, परन्तु निहारिका के नेत्रों से बहते हुए जलकण न रुके...।

□ □
□ □

'श्री सम्राट...।' द्वारपाल ने पुकारा।

'..........।' द्रविड़राज मौन रहे, मानो उन्होंने कुछ सुना ही नहीं।

'श्री सम्राट...!' द्वारपाल ने पुनः पुकारा, नतमस्तक होकर।

वास्तव में वह एक आवश्यक संदेश लेकर द्रविड़राज के प्रकोष्ठ में लगभग आधी घड़ी में खड़ा था।

द्वारपाल की दूसरी पुकार पर सम्राट ने प्रकोष्ठ के द्वार की ओर देखा।

द्वारपाल ने नतमस्तक होकर सम्राट का सम्मान प्रदर्शन किया।

'द्वारदेश पर युद्ध शिविर से श्रीयुवराज का संदेश लेकर एक सैनिक उपस्थित है और लगभग आधी घड़ी से श्रीसम्राट की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा है...।' उसने कहा।

'आधी घड़ी से...?' द्रविड़राज चौंककर बोले—'और तुम अब मुझे सूचित कर रहे हो।'

'मैं सम्राट की सेवा में बहुत देर से खड़ा हूं, परन्तु श्री सम्राट विचारों में इतने तल्लीन थे कि व्यवधान उपस्थित करना मैंने उचित नहीं समझा...।'

‘उसे तुरंत उपस्थित करो।’ सम्राट ने उतावली भरे स्वर में आज्ञा दी।

सैनिक आया। उसने सम्राट को सम्मान प्रदर्शन किया।

‘तुम युद्ध शिविर से आ रहे हो न...? कहो, वहां का क्या समाचार है?’ द्रविडराज ने पूछा।

‘श्री सम्राट के अतुलित प्रताप से सब कुशल है।’

‘युवराज तो सकुशल हैं।’

‘स्वयं महामाया का वरदहस्त उनकी रक्षा कर रहा है, श्रीसम्राट।’

‘श्रीयुवराज पर किसी अनिष्ट की आशंका तो नहीं...?’

‘नहीं श्रीसम्राट।’

‘युद्ध का क्या समाचार है?’

‘अब तक तो सभी युद्धों में हमारी विजय हुई है, श्रीयुवराज की संचालन प्रतिभा अद्भुत है। शत्रु भी आश्चर्यचकित हो उठे हैं श्रीयुवराज का प्रबल प्रताप देखकर।’

अब तक सम्राट के निरंतर प्रश्नों के आगे, सैनिक को न तो युवराज का पत्र देने का और न रत्नहार ही उनके सम्मुख उपस्थित करने का अवसर मिला था।

जब द्रविड़राज सब तरह के प्रश्न पूछकर अपने को आश्वस्त कर चुके तो सैनिक ने उनके सामने युवराज का पत्र और रत्नहार रख दिया।

‘यह क्या...?’ रत्नहार देखते ही द्रविड़राज इस प्रकार चौंक उठे जैसे उनके शरीर में प्रखर विद्युत रेखा प्रवेश कर गई हो।

उन्होंने भयभीत नेत्रों से उस रत्नहार की ओर देखा। पुनः कम्पित करों द्वारा उठाकर उसे मस्तक से लगाया।

'निश्चय ही यह वही पवित्र रत्नहार है...द्रविड़कुल का उज्जवलतम दीपक यह कहां मिला? यह विलुप्त रत्नहार कैसे प्राप्त हुआ तुम्हें?' द्रविड़राज ने उत्सुक नेत्रों से शीघ्रतापूर्वक युवराज नारिकेल का पत्र पढ़ा।

और उनके हृदय में ध्वंसक संघर्ष मच गया।

बहुत वर्षों पूर्व की घटना उनके नेत्रों के सम्मुख तीव्र गति से चित्रित होने लगी।

वे बारम्बार युवराज का पत्र पढ़ने एवं उस पवित्र रत्नहार को मस्तक से लगाने लगे।

उन्हें तीव्रोन्माद-सा हो गया।

'यह पवित्र रत्नाहार शत्रु सेना के संचालक के पास से मिला है...?' पूछा उन्होंने।

'जी हां, किरातों का नायक आजकल आर्य सेना का संचालक है...।' सैनिक ने उत्तर दिया।

'किरातों का नायक...!' बोले द्रविड़राज—'क्या अवस्था होगी उसकी?'

'प्रायः बीस वर्ष।'

'.....।' सम्राट चौंक पड़े सेनानायक का यह उत्तर सुनकर। उन्हें उस बीस-वर्षीय नायक की रण-कौशलता पर आश्चर्य हो रहा था। वे उस नायक के विषय में सोचने में ध्यान-मग्न हो गये थे। पास ही खड़े सैनिक ने उनका ध्यान भंग करते हुए पूछा—

'श्रीसम्राट की क्या आज्ञा है...?'

'तुम जाओ, विश्राम करो...।' सम्राट ने सैनिक को आज्ञा दी।

सैनिक अभिवादन कर चला गया।

द्रविड़राज ने श्वेताम्बर से अपना शरीर आच्छादित किया, पुनः उस रत्नहार को यत्नपूर्वक उस श्वेताम्बर की ओट में छिपाया, तत्पश्चात् महामाया के मंदिर की ओर महापुजारी के दर्शनार्थ चल पड़े।

'श्रीसम्राट आप...!'

महापुजारी को महान आश्चर्य हुआ, द्रविड़राज का ऐसे समय में पदार्पण देखकर। साथ ही चिंता हुई उनके मुख पर दुश्चिंता की रेखायें अवलोकन कर।

'पधारिये सम्राट...।' महापाुजरी ने कहा।

किन्नरी एवं चक्रवाल, जो इस समय महापुजारी के पास ही उपस्थित थे ने द्रविड़राज को सम्मान प्रदर्शित किया।

‘तुम लोग जाओ।’ सम्राट ने चक्रवाल एवं किन्नरी को आज्ञा दी।

उनके स्वर से हृदय का उद्वेग स्पष्ट हो गया था।

चक्रवाल एवं किन्नरी उठकर चले गए।

‘श्रीसम्राट की मुखाकृति मलिन क्यों है?’ महापुजारी ने पूछा—‘क्या श्रीयुवराज की चिंता श्रीसम्राट को उद्वेलित कर रही है या किसी मानसिक आवेग ने हृदय प्रदेश में उथल-पुथल उत्पन्न कर दी है?’

‘.........’ द्रविड़राज निस्तब्ध रहे।

केवल एक बार उन्होंने सिक्त नेत्रों से महामाया की स्वर्ण प्रतिमा की ओर देखा एवं मन ही मन श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक प्रणाम किया।

‘श्रीसम्राट ने मेरे प्रश्नों का कोई भी उत्तर देने का कष्ट नहीं किया...?’ महापुजारी ने उन्हें सचेत किया, परन्तु सम्राट नीरव ही रहे।

‘चक्रवाल...!’ महापुजारी ने पुकारा।

‘चक्रवाल को किस तात्पर्य से बुला रहे हैं आप?’ सम्राट ने पूछा।

‘श्रीसम्राट का हृदय उद्विग्न है—ऐसे समय में चक्रवाल की कला अमूल्य औषधि प्रमाणित होगी...।’

‘नहीं? आवश्यकता नहीं...।’ द्रविड़राज बोले—‘एक चिंताजनक समाचार आपको सुनाने आया हूं।’

‘वह क्या...?’ महापुजारी ने शंकित नेत्रों से द्रविड़राज के गंभीर एवं पीत मुख की ओर देखा।

‘युद्ध शिविर से अभी-अभी एक सैनिक आया है।’

‘क्या समाचार लाया है...? युद्ध की प्रगति संतोषजनक तो है न...? श्रीयुवराज तो सकुशल हैं?’

एक साथ ही महापुजारी ने कई प्रश्न कर डाले।

'युद्ध की प्रगति अनुकूल है, युवराज भी सकुशल हैं परन्तु अवस्था सोचनीय होती जा रही है। जिन बातों को मैं सतत् प्रयत्न कर भूलने की चेष्टा करता हूं, दैव दुर्विपाक से वही बातें पुनः-पुनः उपस्थित होकर मन को अशांत बना देती हैं आप ही बताइये महापुजारी जी कि ऐसी शोचनीय अवस्था में मैं किस प्रकार धैर्य धारण करूंगा...? यद्यपि मैं सम्राट हूं और एक सम्राट को साधारण मनुष्यों की अपेक्षा अधिक संयत एवं अधिक सहनशील होना चाहिये। परन्तु सहनशीलता की भी कोई सीमा होती है, महापुजारी जी। जिन-जिन असहनीय यातनाओं को मैंने मौन रहकर सहन किया है वे क्या साधारण हैं।'

'श्रीसम्राट का तात्पर्य क्या है...?' महापुजारी ने पूछा।

द्रविड़राज कुछ बोल नहीं पाये।

उनका दाहिना हाथ एक क्षण के लिए श्वेत आवरण के अंतप्रदेश में गया और दूसरे ही क्षण उन्होंने महापुजारी के हाथों पर वह बहुमूल्य रत्नहार निकालकर रख दिया—'मेरा तात्पर्य बहुत सरल हैं, महापुजारी जी...।'

'............।' महापुजारी आश्चर्य एवं महान विस्मय से चीख उठे —'यही वह रत्नहार है...। जिसके कारण राजमहिषी त्रिधारा को आजन्म निर्वासन दण्ड का भागी होना पड़ा। यही वह रत्नहार है...जिसने श्रीसम्राट का संहार विनष्टप्राय कर दिया...वही...।'

'जी हां वही रत्नहार है यह। हमारे कुल का उज्ज्वल दीपक आज अकस्मात् हमारे समक्ष पुनः उपस्थित है...अब न जाने क्या अघटित घटना घटने वाली है....?'

'श्रीसम्राट को यह कैसे प्राप्त हुआ?'

'यह किरात नायक के पास से मिला है, जो वर्तमान युद्ध में शत्रु सेना का संचालन कर रहा है। सुनता हूं, नायक की अवस्था केवल बीस वर्ष की है...।' द्रविड़राज के मुख पर उद्वेग एवं चिंता स्पष्ट हो उठी थी।

'केवल बीस वर्ष की अवस्था में इतनी बड़ी सेना का संचालन करना असम्भव-सा प्रतीत होता है और किरातों में इतना शौर्य कहां कि वे युद्ध का तीव्र गति से संचालन कर सकें? महापुजारी बोले।

'किरात नहीं हो सकता वह महापुजारी जी।'

'श्रीसम्राट का केवल अनुमान मात्र है या विश्वास भी...?'

'न जाने क्यों हृदय में यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा है, महापुजारी जी कि वह किरात नहीं हो सकता। मेरे अंतःस्थल में कौतूहल-मिश्रित हाहाकार मूर्त हो उठा है । उसे सहन करना असह्य हो गया हैं असीम वेदना का मार वहन करना अब मेरे लिए दुष्कर है। सांत्वना दीजिये महापुजारी जी।' द्रविड़राज ने अवरुद्ध कंठ से कहा।

महापुजारी मौन रहे।

एक क्षण के लिए उन्होंने नेत्र बंद कर न जाने क्या सोचा। तब उनकी गंभीर आकृति ने और गंभीरता धारण कर ली।

उनके नेत्रद्वय अरुणिम हो उठे।

द्रविड़राज स्थिर दृष्टि से महापुजारी की उद्दीप्त मुखाकृति की ओर देखते रहे।

'महामाया जो कुछ करती है, अच्छा ही करती है श्रीसम्राट!' महापुजारी बोले—'प्रत्येक कार्य में उनकी आगम महिमा अंतर्हित रहती है। आपको यही उचित है कि धैर्य स्मरण कर अपनी सारी मानसिक अशांति एवं प्रलयंकार उद्वेग अपने से दूर भगा दें, इसी में आपका कल्याण है...।'

'यह असम्भव है महापुजारी जी।' द्रविड़राज व्यथित हो उठे—'मेरी दशा तो देखिये, मैं अभागा सम्राट एक साधारण व्यक्ति से भी अधिक संतप्त हूं। ऐश्वर्यवान होकर ही मैंने दुश्चिन्ता में अपना शरीर विदग्ध कर डाला है। मेरी सहायता कीजिये महापुजारी जी।'

'श्रीसम्राट क्या चाहते हैं?' महापुजारी ने पूछा।

उनके नेत्र सम्राट की मुखाकृति पर स्थिर हो गये—द्रविड़राज को ऐसा लगा मानो उन दोनों नेत्रों से दो दाहक ज्वालायें निकलकर उनके अंतःस्थल में प्रविष्ट हो गई हों और अपनी समस्त दाहक शक्ति द्वारा उनके हृदय का रक्त शोषण कर रही हों।

'मैं एक बार युद्ध में चलकर उस किरात युवक को देखना चाहता हूं।' द्रविड़राज ने कहा।

'इसने लाभ।' महापुजारी ने पूछा।

'मेरे हृदय की पुकार है यह।'

आपके हृदय में ममत्व का रोर मच रहा है, श्रीसम्राट।' महापुजारी कठोर स्वर में बोले—'सम्राट होकर आप अपने हृदय पर नियन्त्रण नहीं रख सकते।'

'मैं इस समय सम्राट नहीं, एक संतप्त व्यक्ति हूं, महापुजारी जी। मैं किसी देवी प्रकोप से अक्रांत एक दयनीय प्राणी हूं, मेरी अवस्था पर दया कीजिये—अब तक आपकी समस्त आज्ञाओं का पालन मैंने किया है, आज मेरे इस क्षुद्र अनुरोध का तिरस्कार आप न करें।'

'श्री सम्राट...!'

'अधिक विलम्ब होने से सम्भव है कोई बहुत बड़ा अनिष्ट हो जाये। जाने क्यों मेरा हृदय तीव्र वेग से प्रकम्पित हो रहा है।'

'चलिए। मैं युद्ध शिविर में चलने को प्रस्तुत हूं।' महापुजारी बोले—'गुप्तमार्ग द्वारा चलने से हम लोग तीसरे प्रहर तक युद्ध शिविर में पहुंच जायेंगे।'

महापुजारी उठे। प्रकोष्ठ से अपना पीताम्बर लेकर कंधे पर रखा और तीव्र वेग से सम्राट के साथ बाहर हो गये।

□ □

□ □

‘किन्नरी...!’

चक्रवाल ने पुकारा परन्तु कुछ उत्तर न मिला।

चक्रवाल ने प्रकोष्ठ के बंद द्वार पर कई थपकी दी, परन्तु भीतर से कुछ भी उत्तर न मिला।

चक्रवाल को आश्चर्य हुआ एवं भय भी। न जाने प्रकोष्ठ के भीतर किन्नरी क्या कर रही है?

‘किन्नरी! निहारिका...!’ चक्रवाल ने पुनः कई बार पुकारा, परन्तु उत्तर न मिला था, न मिला।

चक्रवाल का हृदय आशंका से भर गया।

वह किन्नरी के प्रकोष्ठ की छोटी सी खिड़की के नीचे आया। खिड़की के कपाट बंद थे, परन्तु हल्का-सा धक्का देते ही खुल गये।

उसने प्रकोष्ठ के भीतर झांका।

देखा, किन्नरी निहारिका अस्त-व्यस्त सी पलंग के किनारे पड़ी है। उसके नेत्र बंद है। कपोलों पर मुक्ता। सदृश अश्रु-बिन्दु झलक रहे हैं

‘निहारिका!’ चक्रवाल ने तीव्र स्वर में पुकारा।

निहारिका निःशब्द रही, केवल उसका शरीर एक बार मंथरगति से प्रकम्पित हुआ एवं उसके काली घटा जैसे केश, वायु का स्पर्श पाकर आरक्त कपोलों पर लौटने लगे।

‘द्वार खोलो...कब से खड़ा पुकार रहा हूं मैं...।’

‘........’ अब निहारिका ने धीरे से अपना मस्तक उठाकर खिड़की की ओर देखा।

चक्रवाल को महान् आश्चर्य हुआ, किन्नरी की दयनीय दशा देखकर।

निहारिका के नेत्र रोते-रोते एकदम रक्तवर्ण हो रहे थे।

‘तुम रो रही हो...? रो रही हो तुम... मैं एक आवश्यक संदेश लेकर कब से तुम्हारे द्वार पर खड़ा हूं और तुम रो रही हो?’

‘क्या करूं चक्रवाल। सब कुछ तो खो चुकी हूं उस देवता की मधुर स्मृति में, ये अश्रुकण ही तो शेष हैं जो मेरे सुख-दुख के साथी हैं। इन्हें कैसे खो सकती हूं...?’

किन्नरी ने शिथिल पैरों से आगे बढ़कर द्वार खोला।

चक्रवाल भीतर प्रविष्ट हुआ।

‘युद्ध-शिविर से कोई भयानक समाचार आया है....।’ चक्रवाल ने कहा।

‘कैसा भयानक समाचार?’

‘पता नहीं, परन्तु सेना है कि युद्धक्षेत्र से एक सैनिक आया था। देखा नहीं, जब हम और तुम महापुजारीजी के पास बैठे थे, तो श्रीसम्राट ने कैसी उदीप्त भंगिमा धारण किये हुए पदार्पण किया था...याद है?’

‘ओह महामाया...! क्या होने वाला है...?’ किन्नरी बोली—‘मैं मरण नृत्य करना चाहती हूं चक्रवाल। मुझे कुछ ऐसी विश्वास हो रहा है कि श्रीयुवराज कदाचित् अब...।’

‘कैसी बातें करती हो...।’ चक्रवाल ने मधुर झिकी दी—‘महापुजारी जी एवं श्रीसम्राट में बहुत काल तक वार्तालाप हुआ है और दोनों गुप्तमार्ग द्वारा युद्ध शिविर की ओर गये हैं।’

‘युद्ध-शिविर की ओर...?’ सिहर उठी निहारिका—‘अवश्य चिन्तनीय समाचार रहा होगा। मुझे ले चलो, चक्रवाल। मैं भी युद्ध-शिविर की ओर चलना चाहती हूं।’ चलो विलम्ब न करो...उन पर जाने क्या बीत रही होगी...?’

‘गुप्त मार्ग द्वारा श्रीसम्राट एवं महापुजारी जी ने प्रस्थान किया है—हम लोग कैसे चलेंगे।’

‘कोई द्रुतगामी रथ की व्यवस्था करो, चक्रवाल। मेरी अवस्था पर दया करो।’

‘मैं अभी व्यवस्था करता हूं।’

तीव्र गति से चक्रवाल किन्नरी के प्रकोष्ठ से बाहर हो गया।

लगभग घड़ी भर पश्चात् घनघोर वनस्थली को भेदन करता हुआ एक द्रुतगामी रथ वायुवेग से दौड़ा जा रहा था।

चालक के स्थान पर स्वयं चक्रवाल विराजमान था एवं रथ के अंतप्रदेश में आसीन थी सौंदर्यराशि किन्नरी निहारिका।

चक्रवाल का मधुर स्वर वातावरण को सरल बना रहा था—

जो केलि कुंज में तुमको, कंकड़ी उन्होंने मारी।

क्या कसक रही है वह अब भी, तेरे उर में सुकुमारी...।

चौदह

पर्णिक की माता अपने झोंपड़े में किसी आवश्यक कार्य में व्यस्त थी। उसी समय झोंपड़े के द्वार से किसी ने पुकारा—‘माताजी!’

पर्णिक की माता हर्ष-विह्वल हो दौड़ पड़ी, झोंपड़ी के द्वार की ओर।

उसे लगा, जैसे स्वयं पर्णिक युद्धक्षेत्र से लौट आकर स्नेहमयी वाणी में उसे पुकार रहा हो, परन्तु द्वार पर दुर्मुख को खड़ा देखकर उसका हृदय धड़क उठा।

पर्णिक का भेजा हुआ दुर्मुर्ख अभी-अभी ही वहां पहुंचा था।

‘दुर्मुख तुम...!’ पर्णिक की माता आश्चर्य से बोली—‘युद्ध क्षेत्र से आ रहे हो न? पर्णिक सकुशल तो है...?’

‘हां माताजी।’ दुर्मुख ने उत्तर दिया—‘पर्णिक सकुशल है...युद्ध की प्रगति इधर कुछ ही दिनों से बड़ी भयंकरता धारण करती जा रही है। यदि युद्ध इसी प्रकार भयावह गति से चलता रहा तो हमारी पराजय निश्चित है।’

‘आर्य सम्राट की सेना अधिक बलशाली है क्या...?’

‘आर्य सम्राट की सेना।’ चौंक पड़ा दुर्मुख।

एक पल तक चुप रहकर उसने न जाने क्या सोचा। तुरंत ही उसे ध्यान हो आया कि अभी तक पर्णिक की माता यही समझ रही है कि पर्णिक की किरात सेना स्वदेश के रक्षार्थ, आर्य सम्राट से युद्ध कर रही है।

अभी तक इस बात का तनिक भी आभास नहीं होने दिया था उसने कि उसका पुत्र इस समय आर्य सम्राट की सहायता कर रहा है—

‘नहीं माताजी। हम लोग आर्य सम्राट से युद्ध नहीं कर रहे हैं...।’ दुर्मुख ने कहा।

‘आर्य सम्राट से युद्ध नही कर रहे हो...?’ आश्चर्यचकित हो उठी पर्णिक की माता—‘तब किससे युद्ध कर रहे हो तुम लोग?’

‘द्रविड़राज की सेना से।’ दुर्मुख बोला।

‘तो आर्य सम्राट की सहायता कर रहे हो तुम लोग?’ तड़प उठी वह—‘जो उतनी दूर से तुम्हारे देश को नष्ट करने आया है, उसी की सहायता कर रहे हो तुम लोग दुर्मुख...! अपने प्राचीन गौरव की निर्मूल कर विदेशी सत्ता की जड़ें स्थापित करना चाहते हो तुम लोग। क्या पार्णिक की सम्मति से यह सब कार्य हुआ है...?’

‘जी हां माताजी। उनकी पूर्ण सम्मति से।’ पर्णिक की माता का उग्ररुप देखकर दुर्मुख भयभीत हो गया था।

‘पर्णिक इतना निकृष्ट कैसे हो गया? मेरी शिक्षा को उसने एकदम विस्मृत कैसे कर दिया।’

'माताजी! पहले पर्णिक आर्य सम्राट की सहायता करने को सहमत नहीं थे, परन्तु स्वयं आर्य सम्राट ने उनके पास आकर सहायता की याचना की...।'

'सहायता की याचना की और पर्णिक ने उन्हें सहायता देना स्वीकार कर लिया, क्यों?'

'नहीं, उन्होंने फिर अस्वीकार कर दिया था। परन्तु जब आर्य सम्राट आपका अपमान करने लगे—'क्या तुम्हारी माता ने तुम्हें यही सिखाया है कि अपने चरणों में आये हुए भिक्षुक को ठोकर मारकर लौटा दो तो वे चिंता में पड़ गये...।'

'.........।' चौंक पड़ी पर्णिक की माता अपनी शिक्षा का विपरीत परिणाम सुनकर।

'इसी प्रकार आर्य सम्राट ने अन्य बहुत-सी बातें कहकर आपका अनादर किया। जिसे सुनकर पर्णिक को बहुत क्रोध आया। उन्होंने आर्य सम्राट को द्वन्द्व युद्ध में पराजित कर आपके अपमान का प्रतिशोध लिया, तत्पश्चात् आपके सम्मान की रक्षार्थ उन्होंने आर्य सम्राट को सहायता देना स्वीकार कर लिया।

'मेरे सम्मान की रक्षार्थ...' पुलकित हो उठीं वे, परन्तु दूसरे ही क्षण उनकी मुखाकृति परिवर्तित हो गई—'मेरे सम्मान की रक्षार्थ उसने एक विदेशी की सहायता करना स्वीकार कर लिया? मेरे सम्मान की रक्षार्थ उसने अनहोनी को होनी कर दिखाया, परन्तु उसने अपनी जन्मभूमि के सम्मान की रक्षार्थ क्या किया...?'

आवेश में रो पड़ी वे—'एक क्षुद्र जननी के लिए उसने इतना किया तो क्या जननी जन्मभूमि के लिए आत्मोत्सर्ग करना उसने आवश्यक नहीं समझा? जन्मभूमि के सम्मान से अधिक उसने मेरे अपमान को महत्त्व दिया? ओह दुर्मुख! क्या किया तुम लोगों ने? क्या यही है तुम लोगों का स्वदेशाभिमान...?'

'आज कई दिनों से हमारी पराजय हो रही है। आर्य सम्राट की असंख्य सेना को शत्रु की एक सीमित सेना शिथिल करती जा रही है। स्वयं पर्णिक जो कि आजकल आर्य सेना के प्रमुख संचालक हैं अत्यधिक आश्चर्यचकित हो उठे हैं...? कल युद्ध में एक अघटित घटना घट गई, जिसके लिए मुझे यहां तक आना पड़ा...।'

'कौन सी घटना?'

'कल मध्यान्ह में जबकि युद्ध भयानक गति पर था, पर्णिक के गले से आपका दिया हुआ रत्नहार कहीं गिर गया...।'

'गिर गया?' आश्चर्य एवं उद्वेग से चीत्कार कर उठीं वे—'कहां गिर गया?'

'रणक्षेत्र में।'

'आजकल आर्य सेना किससे युद्ध कर रही है...?' पर्णिक की माता ने पुनः पूछा।

'द्रविड़राज से?'

'द्रविड़राज से...? द्रविड़राज से युद्ध हो रहा है? और पर्णिक उनके विरुद्ध आर्य सेना का संचालन कर रहा है? धड़ाम से गिर पड़ी वे भूमि पर।'

उनके नेत्रों के समक्ष अंधकार छा गया। उनके अन्तःस्थल में हाहाकारपूर्ण कोलाहल उठ खड़ा हुआ।

'महामाया! यह सब क्या हो रहा है। आज बीस वर्षों के पश्चात् अब कौन-सा प्रलयंकारी दृश्य देखने को मिलेगा...?' उन्हें स्नेहपूर्वक उठाते हुए सांत्वनापूर्ण स्वर में दुर्मुख बोला—'क्या है माताजी...आप इतनी उद्विग्न क्यों हो गईं?'

'प्रलय का आह्वान कर अब पूछ हरे हो मेरी उद्विग्नता का कारण? मेरे हृदय के शत्-शत् खंड करके अब चाहते हो सांत्वना देना?'

'माताजी! यदि कोई अक्षम्य अपराध हुआ है तो उसके लिए समुदाय की ओर से क्षमाप्रार्थी हूं। कल जो आपकी आज्ञा होगी, उसके अनुसार कार्य करने को हम प्रस्तुत हैं।'

'आज्ञा?' एक क्षण तक कुछ सोचा पर्णिक की माता ने—'मैं इसी क्षण युद्धक्षेत्र को प्रस्थान करना चाहती हूं...यह क्या? मेरी दक्षिण भुजा फड़कने का कारण? दुर्मुख! कोई प्रलयंकारी अनिष्ट सन्निकट है। तुम एक द्रुतगामी अश्व अभी लाओ। मैं इसी समय युद्ध-क्षेत्र को प्रस्थान करूंगी, नही तो अनर्थ हो जायेगा, प्रलय हो जायेगा।'

दुर्मुख दौड़ गया और कुछ ही देर में एक अश्व लिए हुए आ उपस्थित हुआ। एक अश्व पर दुर्मुख और दूसरे पर पर्णिक की माता सवार हो रणक्षेत्र की ओर चल पड़े।

'अब क्या होगा गुप्तचर।' उस गुप्त कन्दरा में, असहाय अवस्था में पड़े हुए आर्य सम्राट अपने गुप्तचर से कह रहे थे—'कई प्रहर हो गये, हम लोग ऐसे बुरे फंसे कि बाहर निकलने का कोई मार्ग ही नहीं रह गया। शत्रुओं ने दोनों ओर से मार्ग बंद कर दिया। है। अब हम इसी कंदरा में शोकजनक मृत्यु को प्राप्त होंगे। युद्ध का न जाने क्या समाचार होगा? कैसे एकाएक विलुप्त हो जाने से पर्णिक न जाने क्या सोचेगा? सेना तो एकदम शिथिल पड़ जाएगी।'

'नहीं जानता था कि गुप्त कंदरा में इतना रहस्य प्रच्छन्न है, नहीं तो श्रीमान् को मैं कभी यहां आने की सम्मति न देता।' गुप्तचर ने कहा।

'हमारी सारी आशाओं का तुषारापात हो गया, हमारी सारी अभिलाषाएं धूल-धूसरित हो गईं!' आर्य सम्राट हताश वाणी में बोले।

□ □

□ □

'मुझे दृढ़ विश्वास है, महापुजारी।' द्रविड़राज ने कहा।

द्रविड़राज एवं महापुजारी पौत्तालिक तीव्रगति से गुप्त मार्ग द्वारा युद्ध की ओर अग्रसर हो रहे थे।

उस गुप्त मार्ग में प्रकाश आने की पूर्ण व्यवस्था थी। इस समय दिन होने के कारण कन्दरा में मद्धिम प्रकाश फैल रहा था।

'महामाया करें, आपका अनुमान सत्य हो, श्रीसम्राट।' महापुजारी बोले।

'मेरे हृदय में ममत्व का दारुण रोर मचा हुआ है। अवश्य मेरा अनुमान सत्य प्रमाणित होगा।' द्रविड़राज ने कहा।

दोनों व्यक्तियों ने अपनी चाल तेज कर दी।

इस समय द्रविड़राज की विचित्र दशा थी। उनके हृदय में हर्ष एवं रुदन का ज्वालामुखी फूट पड़ा था।

कभी वह चाहते थे करुण चीत्कार करना और कभी चाहते थे हर्षतिरेक से हंस पड़ना।

आज वर्षों की शोकाग्नि के पश्चात् हर्षाग्नि प्रज्जवलित हुई थीं, परन्तु उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे देवीचक्र अब भी उनके सर्वथा प्रतिकूल कार्य कर रहा है।

'यह क्या...?' द्रविड़राज एकाएक आश्चर्यचकित हो उठे अपने सामने से सुविशाल प्रवेश द्वार को बंद देखकर कहा—यह द्वार किसने बंद किया...?' क्या यहां बाहरी मनुष्य भी उपस्थित हैं।'

'हो सकता है कि श्रीयुवराज ही ने इसे बंद किया हो।' महापुजारी बोले।

द्रविड़राज ने हाथ बढ़ाकर उस विशाल प्रवेश द्वार के पार्श्व में न जाने क्या किया।

दूसरे ही क्षण वह प्रवेश द्वार धड़-धड़ शब्द करता हुआ खुल गया। द्रविड़राज एवं महापुजारी दोनों व्यक्ति चौंक कपड़े, सुरंग में दूरी पर दो मनुष्यों की स्पष्ट आकृति का अवलोकन कर।

'कौन है? कौन है? जो द्रविड़राज की क्रोधाग्नि में भस्म होना चाहता है।' द्रविड़राज का कठोर गर्जन गूंज उठा, उस गुप्त सुरंग में।

'मैं हूं। आर्य सम्राट तिग्मांशु।' दूसरी ओर से उत्तर आया।

'आर्य सम्राट तिग्मांशु! यहां...।' द्रविड़राज आश्चर्य से अधीर हो उठे।

उन्होंने महापुजारी की ओर देखा और महापुजारी ने उनकी ओर।

दोनों व्यक्ति उस ओर बढ़े जिधर आर्य सम्राट एवं गुप्तचर खड़े हुए स्वयं द्रविड़राज के पदार्पण पर आश्चर्य कर रहे थे।

दोनों महान् सम्राट एक-दूसरे के समक्ष आ खड़े हुए। दोनों ने अपनी प्रथानुसार एक-दूसरे को अभिवादन किया।

तत्पश्चात् द्रविड़राज बोले—'आर्य सम्राट से साक्षात् कर मैं अतीव प्रसन्न हुआ।'

'मेरा अहोभाग्य कि श्रीमान् के दर्शन हुए।' कहा आर्य सम्राट ने।

'मगर आर्य सम्राट के यहां पधारने का कारण...?' महापुजारी ने पूछा।

'हम बंदी हैं।'

'बंदी...? बन्दी हैं आप...?' द्रविड़राज बोले—'किसने बंदी बनाया आपको...?'

'स्वयं युवराज नारिकेल ने।' आर्य सम्राट ने उत्तर दिया।

'युवराज नारिकेल...!' द्रविड़राज के मुख पर दुख के भाव प्रकट हो उठे —तनिक भी सभ्यता नहीं उसमें। नहीं जानता कि एक सम्राट के साथ, दूसरे सम्राट को किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये।'

'परन्तु अपराध मेरा ही था, श्रीमान्। मैं आपके इस गुप्तमार्ग का पता लगाने आया था।'

'आपने अपराध किया था, परन्तु दुर्व्यवहार तो उसका दंड नहीं हो सकता। अपने घर में आये शत्रु से मित्र का सा आचरण करना ही द्रविड़कुल की परम्परा रह आई है, आर्य सम्राट।'

'यहां आपके इस समय कष्ट उठाने का कारण।'

'यही बात मैं आपसे पूछना चाहता हूं, जम्बूद्वीप पर आपके असमय में आक्रमण करने का कारण...?'

द्रविड़राज के स्वर में कुछ तीव्रता आ गई।

'मित्रता का हाथ खींच लेने और याचना ठुकरा देने पर ही आक्रमण हुआ है, श्रीमान्।'

'याचना?' आश्चर्यचकित होकर पूछा द्रविड़राज ने।

'जी हां। सहअस्तित्व की भावना निहित थी हमारी याचना में, परन्तु द्वार पर आये हुए याचक की बातों पर आपने कोई ध्यान नहीं दिया?'

'आप याचक हैं, आर्य सम्राट! आपने मुझसे भिक्षा की याचना की थी? यदि ऐसा हुआ होता तो द्रविड़राज इतने निकृष्ट नहीं थे। क्या आपकी सभ्यता में इसी को याचना कहते हैं? क्या आपके धर्म का यही उपदेश है कि जो भिक्षा न दे, उस पर बल प्रयोग कर भिक्षा प्राप्त करें।'

'....' आर्य सम्राट मौन रहे।

'कहते हैं, आपने भिक्षा मांगी थी...।' क्या भिक्षा दूत भेजकर मांगी जाती है और दूत को यह कहने का भी अधिकार दिया जाता है कि भिक्षा न देने पर बलपूर्वक सर्वस्व अपहरण कर लिया जायेगा? यदि भिक्षा मांगनी थी तो उचित था कि आप स्वतः हमारे समक्ष उपस्थित होते और महापुजारी जी के चरणों पर मस्तक रखकर दया की भिक्षा मांगते।

यदि महापुजारी जी का दयार्द्र हृदय आपकी पुकार पर द्रवित होता तो मैं उनकी आज्ञानुसार अपना सारा साम्राज्य आपके चरणों में अर्पित कर देता।'

'अब तक मैं अपनी नीति के अनुसार कार्य करता हूं...।' आर्य सम्राट बोले।

'ओह!' हंस पड़े द्रविड़राज—'आपने सोचा था कि जिस प्रकार अन्य माण्डलिक राजाओं ने आपका आधिपत्य स्वीकार कर लिया है, उसी प्रकार द्रविड़राज भी कर लेंगे। यह भी नहीं समझा था आपने कि द्रविड़राज में आत्मसम्मान है, देश पर बलिदान हो जाने की भावना है। आपने बलप्रयोग की धमकी दी थी। आज संयोगवश हम दोनों का साक्षात्कार हो गया है। हम लोग आज निश्चय कर लेंगे कि कौन किस प्रकार बलप्रयोग कर सकता है।'

'आर्य सम्राट का कृपाण विपक्षी पर आघात करने के लिए सदैव प्रस्तुत रहता है, श्रीमान्।' आर्य सम्राट ने कहा।

'धन्यवाद...।' द्रविड़राज बोले—'यहां पर्याप्त स्थान नहीं है, मेरे साथ आइये।'

द्रविड़राज आगे बढ़ चले।

एक स्थान पर सुरंग बहुत प्रशस्त थी। वही आकर वे रुक गए।

द्रविड़राज एवं आर्य सम्राट ने अपने-अपने कृपाण संभाल लिए।

दोनों प्रतिद्वन्द्वी एक-दूसरे के समक्ष खड़े होकर घात-प्रतिघात करने में तल्लीन हो गए। कृपाणों की भयानक झंकार से गुप्तमार्ग गुंजरित होने लगा।

पंद्रह

यह पर्णिक के ही बुद्धि चातुर्य का परिणाम था कि आर्य सेना अब तक युद्ध में संलग्न थी।

आर्य-सम्राट तिग्मांशु का विलुप्त होना अत्यंत सावधानीपूर्वक गोपनीय रखा गया था। केवल दो-चार गुप्तचरों एवं स्वयं पर्णिक के अतिरिक्त आर्य सेना का कोई व्यक्ति आर्यसम्राट के विलुप्त होने की बात नहीं जानता।

इस समय भी आर्य-सेना पूर्ण वेग से आक्रमण-प्रत्याक्रमण कर रही थी। समरांगण में रक्त की सरिता प्रवाहित हो रही थी। प्रत्येक सैनिक अपने विपक्षी पर विजय पाने की आशा से ओत-प्रोत था।

एक सुंदर अश्व पर आसीन् पर्णिक अतीव चतुरतापूर्वक आर्य सेना का संचालन कर रहा था।

द्रविड़ सेना का नामधारी संचालक धेनुक, क्रोधोन्मत्त होकर तीक्ष्ण कृपाण से शत्रु का मान-मर्दन कर रहा था।

उसका अतुलित पराक्रम देखकर द्रविड़ सैनिक उत्साहित होकर शत्रुओं का प्रबल आक्रमण कर रहे थे।

पर्णिक को महान् आश्चर्य हुआ, द्रविड़ों की उस छोटी-सी सेना को विकराल आर्य सेना से सफलतापूर्वक युद्ध करते हुए अवलोकन कर।

साथ ही उसे क्रोध भी हो आया, धेनुक का प्रलव सदृश सहारा देखकर।

'सावधान विपक्षी के संचालक उसने गर्जन किया।

'आर्य सेना के संचालक को विदित हो...।' धेनुक बोला—'कि मुझ जैसे क्षुद्र सैनिक को संचालक कहकर अपने उस महान् व्यक्ति का अपमान किया है, जो द्रविड़ सेना का वास्तविक संचालक है...धेनुक इस अपमान का प्रतिशोध लेने को तत्पर है।'

'आ जाओ। आज पर्णिक का भी हस्त-कौशल देख लो...मैं देखना चाहता हूं कि द्रविड़ सेना का यह गुप्त संचालक है कौन? मैं प्रण करता

हूं, आज मैं वह प्रलयवर्षा करूंगा कि बाध्य होकर उस गुप्त संचालक को युद्ध भूमि में आना ही होगा।'

□ □

□ □

अपने शिविर में बैठे हुए युवराज नारिकेल, सैनिक द्वारा लाये हुए युद्ध के समाचारों को प्रतिक्षण सुन रहे थे एवं उसे आवश्यक आज्ञा देकर पुनः रणक्षेत्र की ओर भेज रहे थे, परन्तु उनका हृदय आज न जाने क्यों अत्यधिक व्यग्र था।

सहसा युवराज का ध्यान भंग हो गया—युद्धभूमि से आये एक सैनिक का आर्तनाद सुनकर।

'अनर्थ! प्रलय! विनाश!' उस सैनिक के मुख से स्पष्ट स्वर निकल रहा था।

'क्या है...है क्या...?' युवराज को घोर आश्चर्य हुआ उस सैनिक को पत्ते की तरफ कांपते देखकर।

'धेनुक मारा गया, श्रीयुवराज! आर्य सेना का प्रबल वेग सम्भालना असम्भव हो गया है...द्रविड़ सेना तीव्र वेग से पलायन कर रही है।'

'पलायन!' तड़प उठे युवराज।

'जी हां, श्रीयुवराज। यदि शीघ्र ही आप युद्धक्षेत्र में पदार्पण न करेंगे तो कुछ ही क्षणों में आर्य सेना...चलिए श्रीयुवराज, विलम्ब न कीजिये। बिना आपके चले द्रविड सेना के पैर स्थिर नहीं हो सकते।'

'असंयत न होओ सैनिक युवराज गंभीर स्वर में बोले—'मैं चलता हूं, मेरा अश्व ठीक करो।'

वह सैनिक दौड़ता हुआ शिविर से बाहर चला गया।

युवराज ने अतिशीघ्र सैनिक वस्त्र धारण किये और शिविर से बाहर आ गये।

दो अश्व प्रस्तुत थे।

एक पर उछलकर युवराज आसीन हो गये और दूसरे पर वह सैनिक

तीव्र वेग से दोनों व्यक्तियों ने रणभूमि की ओर प्रस्थान किया।

धेनुक के धराशायी होते ही समस्त द्रविड़ सेना हतोत्साह हो गई और उस समय जबकि आर्य सेना ने उन पर प्रबल शक्ति द्वारा आक्रमण करना प्रारंभ कर दिया तो द्रविड़ सेना रुक न सकी और भाग चली इधर-उधर जंगल व पहाड़ों के मध्य।

आर्य-सेना अपनी विजय पर हर्षोल्लास हो जय-जयकार कर उठी।

'ठहरो...।'

विद्युत के समान युवराज का तीव्र गर्जन, सूर्य छिद्र से चतुर्दिक गूंज उठा।

तीव्र गर्जन के साथ ही भागती हुई द्रविड़ सेना के पैर जहां के तहां रुक गये, मानो किसी दैवी शक्ति ने उनके पैर भूमि पर जकड़ दिये हों

'लौट जाओ...!' वीरत्व पर लगे कलंक को अपने रक्त से धो डालो —अपने शोणित से तृषित मेदिनी की तृष्णा शांत कर दो।' युवराज को देखते ही द्रविड़ सेना का उत्साह द्विगुणित हो गया।

पलकमात्र में द्रविड़ सेना पुनः रणभूमि की ओर पलट पड़ी।

देखते ही देखते पुनः घोर युद्ध प्रारंभ हो गया।

युवराज नारिकेल अपनी तीक्ष्ण कृपाण से शत्रुओं को गाजर मूली की तरह काटने लगे। उनका हस्त-लाघव देखकर द्रविड़ सेना अतीव उत्साह के साथ शत्रुओं का मर्दन करने लगी। एक क्षण में ही आर्य सेना में हाहाकार मच गया।

द्रविड़ सेना का वह गुप्त संचालक रण में आ पहुंचा है श्रीमान्। एक सैनिक ने दूर खड़े हुए पर्णिक से कहा—'देखिये, भागती हुई द्रविड़ सेना

पुनः लौट पड़ी है और चपलतापूर्वक हमसे युद्ध कर रही हैं ऐसा ही वेग रहा तो हमारा पराजय निश्चित है।'

'मैं देखता हूं उस गुप्त संचालक को...।' पर्णिक तीव्रगति से उस ओर बढ़ा।

दूसरे ही क्षण दोनों सेनाओं के संचालक एक-दूसरे के समक्ष खड़े थे, आश्चर्यचकित नेत्रों से एक-दूसरे को देखते हुए।

'किरात कुमार पर्णिक!' युवक के मुख से आश्चर्यचकित स्वर निकल पड़ा।

भला उस किरात युवक को वे भूल कैसे सकते थे जिससे एक दिन भयानक वनस्थली के मध्य युद्ध हुआ था।

'युवराज आप!' पर्णिक की आश्चर्यचकित हो उठा।

'ओह!' इतने दिनों के पश्चात् आज हम लोगों का मिलन हो रहा है।

'हां युवराज! और ऐसे स्थान पर, ऐसे सुखमय वातावरण में कि हम दोनों अपनी विगत शत्रुता की अग्नि-ज्वाला को भली प्रकार शांत कर सकते हैं' पर्णिक बोला।

'यथार्थ कहते हो तुम। महामाया की कृपा से हमारे हृदयों में प्रज्जवलित प्रतिशोधाग्नि की प्रखर ज्वाला ने अन्ततोगत्वा हम दोनों को एक अत्यंत उचित स्थान पर एकत्रित कर ही दिया। यह युद्ध स्थल है और हम दोनों हैं एक-दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी। आज हम दोनों की आकांक्षाएं अवश्य पूर्ण होगी, किरात कुमार।' युवराज ने कहा।

'पर्णिक प्रस्तुत है, युवराज! आइये, आज हमारी शक्ति का निर्णय हो जाये।' पर्णिक ने अपना कार्मुक हाथ में ले लिया।

'तुम मेरे शत्रु हो और स्वदेशद्रोही भी...तुमने स्वदेश की पुकार के विरुद्ध विदेशी की सहायता की हे, अतः तुम्हें प्राणदंड देना मेरा परम कर्तव्य है। युवराज ने भी अपना कार्मुक निकाल लिया।

पर्णिक ने कार्मुक पर तीर चढ़ाया और युवराज ने थी।

कान तक कार्मुक खींचकर पर्णिक ने अपना तीर युवराज के वक्ष को लक्ष्य करके छोड़ दिया।

युवराज के भी कार्मुक से तीव्र वेग से तीर निकला और बीच में ही दोनों तीर आपस में टकराकर छिन्न-भिन्न हो भूमि पर गिर पड़े।

इस बार युवराज ने तीर छोड़ा, परन्तु रण-विशारद पर्णिक ने युवराज के तीर का लक्ष्य अपने तीर से विलक्ष कर दिया। दोनों ओर से तीरों को बौछार होने लगी।

□ □

□ □

'संभालिए, आर्य-सम्राट!' द्रविड़राज बोले।

इस समय उस प्रशस्त सुरंग में आर्य-सम्राट एवं द्रविड़राज परस्पर युद्ध में तल्लीन थे।

घड़ी भर में कृपाण युद्ध हो रहा था, परन्तु अभी तक कोई भी किसी पर विजय नहीं पा सका था।

दोनों सम्राट नाना प्रकार के कौशल, युद्ध में प्रयोग कर रहे थे। महापुजारी एवं गुप्तचर खड़े थे, मौन होकर।

'अद्भुत है। आपका प्रतिघात अद्भुत है, द्रविड़राज।' आर्य सम्राट आश्चर्य से बोले।

'सावधान आर्य सम्राट।'

'द्रविड़राज का कृपाण प्रबल वेग से लपका आर्य-सम्राट की ओर परन्तु आर्य-सम्राट ने अतीव सावधानी से उस प्रतिघात का निवारण कर लिया।

'द्रविड़राज को विदित हो।' आर्य-सम्राट केवल एक ही व्यक्ति द्वारा पराजित हुए हैं—अन्यथा इस संसार का कोई वीर सम्राट को विजित नहीं कर सका है...।'

द्रविड़राज कुछ न बोले। उनका घात-प्रतिघात तीव्र वेग से चल रहा था।

आर्य-सम्राट अत्यंत ही विस्मयग्रस्त होकर बोले—'आश्चर्य है द्रविड़राज, आपकी युद्ध प्रणाली एकदम वैसी ही है जैसी किरानायक पर्णिक की।'

'किरात-नायक पर्णिक आश्चर्य-विस्फारित नेत्रों से आर्य-सम्राट की ओर देखते हुए बोले द्रविड़राज।

'जी हां। उस युवक से मैं युद्ध कर चुका हूं वह भी आप ही जैसा घात-प्रतिघात करता है...इस संसार में केवल वही व्यक्ति है, जिसने आर्य-सम्राट को पराजित किया है।'

'उसने पराजित किया है आपको?' विस्मय से द्रविड़राज पूछ बैठे—'उस बच्चे ने आपको पराजित किया है? आश्चर्य!' और द्रविड़राज का कृपाण रुक गया—'मुझे अब आपसे युद्ध करने की आवश्यकता नहीं।'

'क्यों?'

'जब आप उस बच्चे को पराजित न कर सके तो मुझ पर विजय पाना आपकी दुराशा मात्र है।' द्रविड़राज ने कहा।

परन्तु न समझ सके आर्य-सम्राट द्रविड़राज की इस अद्भुत पहेली को। कुछ अस्थिर होकर उन्होंने शीघ्रता से कहा।

'हैं मेरे बाम नेत्र के इस तरह फड़कने का कारण....?' चलिए महापुजारी जी, अत्यधिक विलम्ब हो गया...अब रणक्षेत्र की ओर चलना परम आवश्यक है...सन्ध्याकाल सन्निकट है।'

□ □

□ □

'सन्निकट है...अब आपकी मृत्यु सन्निकट है युवराज सावधान!' पर्णिक ने कृपाण का भरपूर घात किया युवराज पर, परन्तु युवराज ने अतीव शीघ्रतापूर्वक उस घात को रोक लिया।

जब दोनों विकट प्रतिद्वन्द्वी बाण-युद्ध में एक-दूसरे पर विजय। प्राप्त कर सके, तो कृपाण-युद्ध में तल्लीन हो गये।

आर्य एवं द्रविड़ सेनायें अपने संचालकों का यह विकट युद्ध देखकर देखकर अतीव उत्साह के साथ युद्ध कर रही थी।

'तुमने हमारे कुल के पवित्र रत्नाहार की चोरी की थी पर्णिक तुम्हारा अपराध अक्षम्य है।' युवराज ने कहा।

'मैंने आपका रत्नहार चुराया है, युवराज...!' पर्णिक व्यंग्यपूर्ण स्वर में हुंकार उठा—'असत्य है यह बात—मेरी माताजी का वह रत्नहार था। आप असत्य भाषण करने का दुस्साह न करें।'

'दुस्साहस...!' क्रोध से कांप उठे युवराज और उनका कृपाण वायुमंडल में नृत्य कर उठा तीव्र वेग से।

'अस्त्र-संचालन परिहास नहीं है युवराज। पर्णिक को सरलता से परास्त करना परिहास नहीं...।' पर्णिक ने सावधान किया।

'सावधान किरात कुमार...!' युवराज गरजे—'मेरा घात सम्भालो।'

युवराज का कृपाण पर्णिक की ओर लपका।

पर्णिक ने अपना कृपाण, घात के निवारणार्थ युवराज के कृपाण के आगे कर दिया।

परन्तु युवराज का प्रहार इतने प्रबल वेग से हुआ कि पर्णिक का कृपाण भयानक झन्नाटे के साथ उसके हाथों से छूटकर दूर जा गिरा।

युवराज का कृपाण सन्निकट ही था कि पर्णिक के वक्ष में प्रवेश कर अपनी रक्त-पिपासा शांत करता परन्तु न जाने क्यों युवराज का हाथ एकाएक कांप गया।

उनका हृदय करुण चीत्कार कर उठा।

'रुक क्यों गये युवराज...?' पर्णिक ने गर्वयुक्त वाणी में कहा—'शत्रु की दया का मैं आकांक्षी नहीं। आप विजेता हैं—मेरे रक्त से अपनी कृपाण की प्यास बुझा लें...आप न जानते होंगे युवराज—कि पर्णिक की माता ने उसे वीरतापूर्वक मरना सिखाया है।'

'और तुम नहीं जानते होंगे, पर्णिक युवराज बोले—'कि युवराज के पिता ने उन्हें निर्बलों को क्षमा कर देने की सीख दी है।'

'धन्य हैं आपके पिता...।'

'केवल मेरे ही पिता नहीं, तुम्हारी भी पिता—जम्बूद्वीप के प्रत्येक प्राणी के पिता है वे।' युवराज बोले—'अपना कृपाण उठाओ...अभी तुमसे मेरी रणलालसा शांत नहीं हुई है...।'

युवराज ने पर्णिक का कृपाण स्वयं उठाकर उसके हाथ में दे दिया।

'युवराज बड़े सहृदय हैं...।' पर्णिक ने कहा।

दोनों दुर्दान्त प्रतिद्वन्द्वी कृपाण युद्ध में संलग्न हो गये।

पुनः दोनों की मुखाकृति पर क्रोध की लालिमा दौड़ गई और दोनों एक-दूसरे पर भयंकर घात-प्रतिघात करने लगे।

उसी समय उच्च-स्वर में एक श्रृंगाल आर्तनाद कर उठा।

□ □

□ □

श्रृंगाल आर्तनाद कर रहे हैं अंग फड़क रहे हैं...सर्वनाश होने वाला है, चक्रवाल।'

'महामाया का स्मरण करो...।' चक्रवाल ने गंभीर स्वर में कहा। इस समय रथ घनघोर जंगल के मध्य से चला जा रहा था। स्वयं चक्रवाल रथ संचालन कर रहा था और भीतर बैठी थी किन्नरी निहारिका। उसका हृदय तीव्रगति से स्पन्दित हो रहा था।

'रथ और वेग से चलाओ चक्रवाल...। संध्या सन्निकट है...न जाने क्यों हृदय-प्रदेश पर एक अनिर्वचनीय भय की सृष्टि होती जा रही है। मुझे शीघ्र से शीघ्र रणक्षेत्र में पहुंचा दो। मैं उन्हें एक बार देखना चाहती हूं—केवल एक बार।'

उसके नेत्रों में अश्रु-कण झिलमिला उठे थे।

'यह तुम क्या कह रही हो...?'

'ऐसा प्रतीत होता है, चक्रवाल! मानो शीघ्र ही मेरा सर्वनाश होना चाहता है। तुम मेरे ऊपर दया करो। रथ और वेग से ले चलो।'

चक्रवाल ने अश्वों को चाबुक मारी। अश्व तीव्र गति से भाग चला।

रथ के भारी पहियों द्वारा उठता धड़-धड़ शब्द शून्य वनस्थली को कम्पित करने लगा।

'जी चाहता है, सदैव इसी प्रकार हमारा तुम्हारा युद्ध होता रहे।' युवराज कहते रहे थे—'दिवस के प्रोज्ज्वल प्रकाश में, रात्रि के प्रगाढ़ अंधकार में, ग्रीष्म की विदग्धकारी ऊष्णता में, वर्षा के अविरल बिन्दुपात में एवं हेमन्त की शीतलता में हमारे ये कृपाण इसी प्रकार संचालित रहें। ओह! कितना अच्छा प्रतीत हो रहा है, तुमसे युद्ध करना पर्णिक, अद्भुत हो तुम...?'

'युवराज अन्यमनस्क क्यों होते जा रहे हैं?'

'नहीं तो...अब तो हम अनन्त काल तक युद्ध करने में तल्लीन रहेंगे। वह देखो, सूर्य की अंतिम किरणें अस्तांचल की ओट में अन्तर्हित होने जा रही

हैं। प्रतीच्याकाश पर रक्त रंजित प्रदोष का नृत्य क्या ही मनोरम प्रतीत हो रहा है। तुम देख रहे हो न...?'

□ □

□ □

'देख रही हूं, वह युद्ध शिविर है न?' पर्णिक की माता ने सामने के शिविरों की ओर संकेत कर दुर्मुख से पूछा। दुर्मुख ने मस्तक हिलाकर स्वीकृति दी।

दोनों इस समय आर्य-शिविर के सन्निकट आ पहुंचे थे।

'मुझे शीघ्र उस स्थल पर ले चलो, जहां युद्ध हो रहा है।' पर्णिक की माता ने कहा और घोड़े से उतर पड़ी वह।

द्रविड़राज युगपाणि भी आर्य सम्राट एवं महापुजारी के साथ अभी-अभी ही गुप्त मार्ग से बाहर निकलकर युद्ध शिविर में पहुंचे थे।

पर्णिक की माता की दृष्टि द्रविड़राज पर घड़ी और द्रविड़राज की दृष्टि पर्णिक की माता पर।

एक क्षण के लिए दोनों स्तब्ध रह गये—

'राजमहिषी...!' आर्त स्वर में पुकारा द्रविड़राज ने।

'नाथ...।' दौड़कर पर्णिक की माता गिर पड़ी उनके चरणों पर।

'प्रिये...।' हर्षतिरेक से द्रविड़राज के मुख से शब्द ही नहीं निकल रहे थे —'मुझे क्षमा कर दो देवी।'

वे थीं राजमहिषी त्रिधारा।

□ □

□ □

'अब रहने दीजिये युवराज। संध्या का आगमन हो रहा है, अब युद्ध स्थगित कर देना चाहिये।' पर्णिक ने कहा।

'अब तो युद्ध रुकना असम्भव है पर्णिक संध्या का आगमन एवं रात्रि का प्रगाढ़ अंधकार इस युद्ध में बाधा नहीं पहुंचा सकते...।' युवराज ने कहा।

उन पर न जाने कैसा उन्माद-सा छा गया था।

पर्णिक धीरे-धीरे क्रुद्ध होता जा रहा था, युवराज का युद्ध के लिए हठ देखकर।

'अब बचाना युवराज।' वह चिल्लाया ओर उसका कृपाण प्रलयंकर गति से युवराज की ओर बढ़ा।

युवरजा इस समय कुछ भूले-से हो रहे थे।

उनके नेत्र पश्चिमाकाश की अरुणिमा पर केन्द्रित हो रहे थे।

पर्णिक की तड़प सुनकर वे सचेत हुए।

उन्होंने प्रतिघात के अपना कृपाण सम्भाला।

उसी समय दौड़कर आते द्रविड़राज का स्वर गूंज उठा युद्धस्थली में—'युवराज रोक लो कृपाण...!'

झटके के साथ युवराज का कृपाण रुक गया, अपने पिता का स्वर सुनकर।

परन्तु पर्णिक का कृपाण न रुका।

तीव्र वेग से आते हुए विकराल कृपाण ने युवराज के वक्ष का चुम्बन कर ही लिया।

उनके मुख से एक करुण चीत्कार निकलकर दिशाओं को प्रताड़ित कर उठी।

वे चेतनाहीन होकर भूमि पर गिर पड़े—कटे हुए वृक्ष की तरह। घाव भयानक था।

'क्या हुआ...? क्या हुआ...?' द्रविड़राज दौड़े आये युवराज के पास।

पर्णिक की माता भी आई। देखा—युवराज का जीवन प्रदीप बुझने के समीप था।

'युवराज! मेरे लाल...।' द्रविड़राज रो पड़े।

'पिताजी...?' युवराज ने नेत्र खोले—'मैंने अपने विपक्षी पर विजय पाई है। द्रविड़राज की उज्जवल कीर्ति पर कलंक-कालिमा नहीं लगाने दी है...मैंने उसे निर्बल जानकर क्षमा कर दिया है।'

'कौन है तुम्हारा वह विपक्षी युवराज?

'वह है पिताजी...। यह ... यही एक दिन जंगल में मुझसे मिला था...।' युवराज ने अपने अशक्त करों से पर्णिक की ओर संकेत किया, जो इस समय प्रस्तरवत् खड़ा आश्चर्यचकित नेत्रों से आश्चर्यमय घटना देख रहा था।

'यही है तुम्हारा विपक्षी...?' द्रविड़राज हाय कर उठे—'वत्स! यह तुम्हारा लघु भ्राता है।'

'लघु भ्राता...।' युवराज कांप उठे।

उन्होंने उठने का प्रयत्न किया, परन्तु चेतनाहीन होकर गिर पड़े।

पर्णिक ने झपटकर उन्हें संभाला।

धीरे-धीरे युवराज ने पुनः अपने नेत्र खोले।

पर्णिक ने देखा, उन नेत्रों में मृत्यु की स्पष्ट छाया विराजमान है। अब जीवन की आशा दुराशामात्र है।

'पर्णिक!' युवराज ने कांपते स्वर में पुकारा।

'भ्रातृवर...' रो पड़ा अभागा पर्णिक—'मुझे क्षमा करो भ्रातृवर।'

और युवराज ने पर्णिक के मस्तक पर अपना शिथिल हाथ रख दिया।

पर्णिक की माता चेतनाहीन होकर एक ओर लुढ़की पड़ी थी। महापुजारी उन्हें चेतना में लाने का प्रयत्न कर रहे थे।

'आपने हमें विनष्ट कर दिया आर्य-सम्राट!' द्रविड़राज बोले।

आर्य-सम्राट सिक्त नेत्रों से यह सारा दृश्य देखते हुए खड़े थे।

'हम क्षमा चाहते हैं द्रविड़राज। हम हारे, आप जीते। कल हमारी सेना जम्बूद्वीप से प्रस्थान कर देगी । आर्य सम्राट तिग्मांशु बोले।

'नहीं आर्य सम्राट! आपने जिस लालसा से जम्बूद्वीप में पदार्पण किया है वह अवश्य पूर्ण होगी...यह देखिये, आज युगों की असहनीय ज्वाला में विदग्ध होने के पश्चात यह देवी मुझे प्राप्त हुई हे। एक दिन मैंने अपने इसी मुख द्वारा इन्हें आजन्म निर्वासन की दण्डाज्ञा सुनाई थी और आज इसी अपने अधूरे न्याय पर पश्चाताप कर रहा हूं। इन्होंने न्याय धर्म का पालन किया था, परन्तु पति धर्म का पालन मैं न कर सका था। आज इस देवी के साथ में भी निर्वासन दण्ड स्वीकार कर पति धर्म पालन करूंगा...आज से यह सारा विशाल साम्राज्य आपका है और वह मेरा पर्णिक आपका सहकारी...आप भिक्षुक हैं...मैंने आपको अपना विशाल साम्राज्य एवं वीर पुत्र प्रदान कर दिया। द्वार पर आये हुए भिक्षुक को द्रविड़राज निराश नहीं लौटाते, आर्य-सम्राट! अब हम दोनों पति-पत्नी जंगलों में विचरण करते हुए निर्वासन दण्ड की पूर्ति करेंगे।'

और द्रविड़राज फूट-फूटकर रो पड़े।

आर्य सम्राट के नेत्रों से भी अश्रु-बिन्दु गिरकर भूमि का सिंचन करने लगे।

□ □

□ □

नोट : यह इतिहास प्रसिद्ध बात है कि द्रविड़ और आर्यों के युद्ध के पश्चात् यह सारा देश आर्यों के हाथ में आ गया था। इसे हमने इस प्रकार दिखाया है कि द्रविड़राज ने आर्य सम्राट को साम्राज्य प्रदान कर

दिया। पाठकों। यह उपन्यास ऐतिहासिक प्रतीत होगा, परन्तु वास्तव में ऐतिहासिक नहीं है—हिस्टोरीकल टच मात्र दिया गया है इस उपन्यास में जिस काल का वर्णन है, यदि उस काल के इतिहास से पाठक मिलान करने लगेंगे, तो इसमें बहुत-सी अत्युक्तियां पायेंगे।

—लेखक

द्रविड़राज के नेत्रों की ज्योति क्षीण होती जा रही थी।

उनकी म्लान मुखाकृति पर मृत्यु के क्रूर लक्षण दृष्टिगत होने लगे थे।

उनके मरणासन्न हृदय में भयानक अंधकार प्रसार पाता जा रहा था।

उसी प्रगाढ़ अंधकार में युवराज ने देखा कलामयी किन्नरी की मनोहारी प्रतिमा।

युवराज का शरीर उस प्रतिमा को देखकर प्रकम्पित हो उठा। एक क्षण के लिए उनके नेत्रों की ज्योति लौट आई।

उन्होंने देखा, किन्नरी निहारिका विह्वल भंगिमा लिए उसी ओर एक रथ पर से उतरकर दौड़ी जा रही है और गायक चक्रवाल भी उसके पीछे भागा आ रहा है। उसके नेत्रों से अश्रुकण लुढ़ककर उसके गालों को भिगो रहे हैं।

'किन्नरी!' युवराज के मुख से अस्फुट स्वर निकले।

'देव!' किन्नरी हाहाकार करती हुई युवराज के रक्तरंजित शरीर पर पछाड़ खाकर गिर पीड़ी।

'किन्नरी! कलामयी!'

'देव...!' यह क्या हो गया, देव। तुमने मुझसे ऐसा छल क्यों किया...?' किन्नरी ने अपनी हथेलियों से युवराज का मुख पकड़ लिया —'बोलो देव! मुझे असहाय बनाकर तुम्हें क्या मिला? मुझे विनष्ट कर

दिया। पाठकों। यह उपन्यास ऐतिहासिक प्रतीत होगा, परन्तु वास्तव में ऐतिहासिक नहीं है—हिस्टोरीकल टच मात्र दिया गया है इस उपन्यास में जिस काल का वर्णन है, यदि उस काल के इतिहास से पाठक मिलान करने लगेंगे, तो इसमें बहुत-सी अत्युक्तियां पायेंगे।

—लेखक

द्रविड़राज के नेत्रों की ज्योति क्षीण होती जा रही थी।

उनकी म्लान मुखाकृति पर मृत्यु के क्रूर लक्षण दृष्टिगत होने लगे थे।

उनके मरणासन्न हृदय में भयानक अंधकार प्रसार पाता जा रहा था।

उसी प्रगाढ़ अंधकार में युवराज ने देखा कलामयी किन्नरी की मनोहारी प्रतिमा।

युवराज का शरीर उस प्रतिमा को देखकर प्रकम्पित हो उठा। एक क्षण के लिए उनके नेत्रों की ज्योति लौट आई।

उन्होंने देखा, किन्नरी निहारिका विह्वल भंगिमा लिए उसी ओर एक रथ पर से उतरकर दौड़ी जा रही है और गायक चक्रवाल भी उसके पीछे भागा आ रहा है। उसके नेत्रों से अश्रुकण लुढ़ककर उसके गालों को भिगो रहे हैं।

'किन्नरी!' युवराज के मुख से अस्फुट स्वर निकले।

'देव!' किन्नरी हाहाकार करती हुई युवराज के रक्तरंजित शरीर पर पछाड़ खाकर गिर पीड़ी।

'किन्नरी! कलामयी!'

'देव...!' यह क्या हो गया, देव। तुमने मुझसे ऐसा छल क्यों किया...?' किन्नरी ने अपनी हथेलियों से युवराज का मुख पकड़ लिया—'बोलो देव! मुझे असहाय बनाकर तुम्हें क्या मिला? मुझे विनष्ट कर

देने में तुम कौन-सी निधि पा गये—मुझसे नाता तोड़कर तुमने कौन-सा संसार बसा लिया...?'

किन्नरी के आरक्त कपोल अश्रु धारा से भीग गये थे।

चक्रवाल एक वृक्ष के नीचे अश्रुपूर्ण नेत्रों से खड़ा था।

'तुम मुझे छोड़कर जा रहे हो, सदैव के लिए जा रहे हो...कहां जा रहे हो, देव...न जाओ। मेरा संसार नष्ट कर, तुम अपना दूसरा संसार बसाने न जाओ।'

'जाना ही होगा किन्नरी...।' युवराज अत्यंत शिथिल वाणी में बोले—'यमदूत मेरा आह्वान कर रहे हैं...मैं प्रसन्न हूं—अत्यंत प्रसन्न हूं, शोक केवल इस बात का है कि नन्दन कानन में समग्र ऐश्वर्य की प्राप्ति करके भी, तुम्हारी मधुर मूर्ति का दर्शन न कर सकूंगा—जहां चन्द्र एवं तारागणों की कला अवलोकन करने को मिलेगी—वहां तुम्हारी मुग्धकारी कला न मिल सकेगी देखने को...।'

'तुम जो रहे हो स्वर्गीय अप्सराओं की कला का रसास्वादन करने, तुम भूल जाओगे इस भू-किन्नरी की कला को? जाओ। मेरा संसार विनष्ट कर देने से, यदि तुम्हारा संसार हरा-भरा हो सके तो जाओ। मेरे हृदय में अनिर्वचनीय आनंद की सृष्टि कर, अब सदैव के लिए चले जा रहे हो, मधुर प्रेम का नाता तुड़ाकर...।'

'तुड़ाकर सभी से मधुर प्रेम नाता।

चढ़ा भाग्य की नाव पर बहा जा रहा हूं।'

चक्रवाल गाने में तन्मय था।

ऐसा न कहो—न कहो, कलामयी! मेरा रोम-रोम तुम्हारी सर्वतोमुखी कला द्वारा परिपूर्ण है। मैं ही जानता हूं कि तुम्हें सदैव के लिए त्याग देने में मुझे कितनी वेदना हो रही है, मैं कितना व्यथित हूं।'

युवराज के मुख से रक्त की धार बह चली, परन्तु वे शिथिल एवं अस्फुट-स्वर में कहते ही गये—'तुम्हारी कला! ओह...उसका स्मरण न दिलाओ, कलामयी। तुम्हारी कला पर यदि सब-कुछ निछावर कर दूं तो भी वह पूर्ण नहीं हो सकती। जब तुम अपनी समग्र प्रभा का एकत्रीकरण कर, अपनी सम्पूर्ण कला का संवरण कर, महामाया के समक्ष नृत्य करती थीं तो मुझे ऐसा लगता था मानो तुम्हारे अवयव के संचालन के साथ जगत के यावत कार्य संचालित हो रहे हैं, मानो तुम्हारे नृत्य के साथ-साथ प्रकृति नटी का समस्त सौंदर्य नर्तन करने में तल्लीन है। मैं तुम्हारा यह अपूर्व नर्तन अवलोकन करते-करते मुग्ध हो जाता था, आत्मविस्मृत-सा हो उठता था, उस समय तुम कलामयी! सुंदर प्रतिमा-सी प्रतीत होती थी। देवी-सा प्रोज्जवल मुख हो जाता था तुम्हारा। मानो स्वयं जगत् रचयित्री देवी महामाया अपने अपूर्व नर्तन से अपनी शक्ति की प्रभा बिखेर रह हो। उस समय मैं स्वयं मातेश्वरी महामाया का प्रतिरुप मानकर, तुम्हें भक्तिपूर्वक सादर प्रणाम करता था। तुम्हारा सौंदर्य मातेश्वरी महामाया-सा देदीप्यमान है, कलामयी? जहां उपासना की सद्भावना विराजमान है, वहां कलुषता की कालिमा का आभास कहां...।'

युवराज की वाणी अवरुद्ध होनी लगी।

उनके मुख पर आसन्न मृत्यु के स्पष्ट लक्षण प्रकट होने लगे।

फिर भी उनके मुख से अत्यंत क्षीण स्वर निकला—'अब विदा दो कलामयी...।'

उनके नेत्रों से अश्रुकण प्रवाहित हो चले।

निहारिका उनके मुख की ओर अपलक नयनों से निहारती रही।

निहारो नयीं प्रयेसी राह पर अब,
सदा के लिए मैं चला जा रहा हूं।
तुड़ाकर सभी से मधुर प्रेम नाता,
चढ़ा भाग्य की नाव पर बहा जा रहा हूं।

एक वृक्ष के नीचे बैठा हुआ चक्रवाल सिक्त स्वर में गा रहा था। किन्नरी ने अपने आंचल द्वारा युवराज के अश्रुकण पोंछ पुनः आंचल के छोर से थोड़ा-सा कुंकुम निकालकर युवराज के ललाट पर लगा दिया।

युवराज का शरीर तीव्र वेग से कम्पित हो उठा।

वायु गर्जन करता हुआ प्रवाहित होने लगा।

वृक्षों पर बैठे हुए पक्षीगण आर्तनाद करते हुए दूर उड़ चले।

किन्नरी निहारिका युवराज के निर्जीव शरीर पर चेतनाहीन होकर गिर पड़ी।

शीघ्र ही चंदन की चिता तैयार की गई।

उस पर युवराज का निर्जीव शरीर रख दिया गया।

रुदन करते हुए पर्णिक ने अपने देवतुल्य भ्राता की चिता में अग्नि दी।

अश्रुपूर्ण नेत्रों से महापुजारी पौत्तालिक ने महामाया का प्रार्थना की एवं शांति पाठ पढ़ा।

वायु का वेग पाकर चिता की प्रखर ज्वाला धू-धू कर प्रज्जवलित हो उठी।

और उसी के साथ-साथ प्रज्जवलित हो उठा निहारिका का सन्तप्त हृदय।

उसने अपने कंठ प्रदेश से वह रत्नमाला एवं अनामिका से मुद्रिका निकाली, जिसे स्वयं युवराज नारिकेल ने उसे प्रदान किया था।

एक क्षण तक वह कुछ विचार करती रही, तत्पश्चात हाथ बढ़ाकर उसने वे दोनों वस्तुएं उस प्रज्जवलित चिता की गोद में फेंक दी।

चक्रवाल देख रहा था।

वह दौड़कर उसके पास आया—'यह क्या किया तुमने।' वह बोला —'उनके अनुपम उपहारों को अपने से विलग क्यों कर दिया तुमने, निहारिका।'

'जाने दो...जाने दो चक्रवाल...।' निहारिका रो पड़ी—'इन वस्तुओं को उनके साथ ही जाने दो। मेरे पास रहकर ये सदा मुझे सन्तप्त करती रहनीं।'

चक्रवाल कुछ न बोला।

उसके भी नेत्र अश्रुपूर्ण थे।

'चलो चक्रवाल...! यहां से कहीं दूर निकल चलो...?' मैं यहां नहीं रह सकती—रहूं भी तो किसके लिए।'

'चलोगी...?' चक्रवाल ने शून्य दृष्टि से किन्नरी के मुख की ओर देखा —'व्योम की ओर चलोगी निहारिका।'

'चलूंगी। जहां कहीं भी ले चलो।' निहारिका ने कहा।

चक्रवाल रथ की ओर बढ़ा।

निहारिका ने उसका अनुसरण किया।

दोनों आकर रथ पर आकर बैठ गये।

रथ तीव्र गति से भयानक वनस्थली का वक्ष भेदन करता हुआ भाग चला।

चक्रवाल की मधुर स्वर-लहरी रुदन स्वर में परिवर्तित होकर अलाप उठी —

तुड़ाकर सभी से मधुर प्रेम नाता।

चढ़ा भाग्य की नाव पर बहा जा रहा हूं।

उस समय भगवान अंशुमाली ने अस्तांचल के कोड में अपना प्रोज्जवल मुख छिपा लिया था।

वृक्षों के हरित पल्लव वेदनापूर्ण गति से हिल रहे थे।

प्रतीच्याकाश पर रक्तरंजित लालिमा अभी तक विद्यमान थी मानो प्रकृति किन्नरी के कलापूर्ण करों ने शुभ्र नभमण्डल के देदीप्यमान ललाट पर कुंकुम की एक अरुणिम रेखा खींच दी हो।

*** * * समाप्त * * ***

आमंत्रण और निमंत्रण

'आमंत्रण' और **'निमंत्रण'** दोनों
है, पर ऐसा है नहीं। दोनों ही शब्दो
उपस्थिति है। सामान्य रूप से 'आ
लिए प्रयुक्त होते है, परंतु 'आ' औ
विशिष्टता आ गई है।

आमंत्रण और निमंत्रण में अंतर

आमंत्रण में अच्छी तरह बुलाने क
अच्छी तरह का ही बुलावा है, पर
से इसमें जुड़ गया है। न्योता इसी
कार्यक्रम में भोजन-नाश्ते की व्यव
भेजा जाता है, पर मंच पर भाषण
लिए बुलाना हो तो आमंत्रित किय

ा

ना अर्थ समान समझ लिया जाता
ं में 'मंत्र' धातु की एक सी
मंत्रण' और निमंत्रण बुलावा के
र 'नि' के चलते इनके अर्थों में

ा भाव निहित है। निमंत्रण भी
भोजन आदि का हेतु विशेष रूप
निमंत्रण से निकला है। किसी
ास्था हो तो लोगों को निमंत्रण
करने, कविता आदि पढ़ने के
ा जाता है।


मुड़ कर देखो तो
क्या लाई हूं लल्ला...


मटका-मक्खन
नहीं,
मोबाइल
चाहिए!

